UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180964

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY
Call No. H82/M96D Accession No. G.H. 1631
Author मुन्शी, कन्हैयालाल
Title ध्रुवस्वामिनी देवी / 1948
This book should be returned on or before the date last marked below.

मुन्शी साहित्य ४

८३३·२
ऐतिहासिक नाटक

ध्रुवस्वामिनीदेवी

लेखक

कन्हैयालाल मुन्शी

प्रकाशक

किताब महल • इलाहाबाद

प्रथम संस्करण
जनवरी, १९४८

लेखक
कन्हैयालाल मुन्शी

•

अनुवादक
शिवचंद्र नागर

•

संशोधक
सत्यनारायण व्यास

प्रकाशक
किताब महल, इलाहाबाद

मुद्रक
जे० के० शर्मा, इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

भूमिका

लगभग ई० सन् ३०० में भारत भूमि का अधिक भाग विदेशियों से पददलित हो चुका था। गोदावरी तटवर्ती आन्ध्रों की सत्ता नष्ट हो गई थी। कोकण, लाट, सौराष्ट्र, आनर्त, राजपूताना, पंजाब और गंगातीर पर परदेशी राजा राज्य करते थे। वे सब 'अब्रह्मवर्चस, फल्गुदास्तीव्रमन्यव'—ब्रह्मतेज रहित, तथा धूल की तरह गर्वीले स्वभाव के थे।

मगध में उस समय विश्वष्फणी राज्य करता था। उसने कई राज्य जीते और उनके सिंहासन अनेक जाति के राजाओं को दिये। उसके उपरांत श्रीगुप्त नाम का राजा हुआ। यह राजा मगध और साकेत पर राज्य करता था।

उसका पुत्र चन्द्रगुप्त हुआ। इसका विवाह लिच्छवी वंश की कुमारी कुमारदेवी के साथ हुआ था। चन्द्रगुप्त और कुमारदेवी प्राचीन भारतवर्ष के आदर्श वर-वधू हैं। सम्राट् और सम्राज्ञी दोनों राज्य के स्तंभ थे।

उनका पुत्र समुद्रगुप्त माता-पिता के लग्न का सिक्का चलाता है और वह अपने को केवल चंद्रगुप्त का पुत्र ही नहीं, बल्कि कुमारदेवी का पुत्र भी प्रसिद्ध करता है। माता के प्रति इतना सम्मान भारत के इतिहास में किसी भी राजा ने प्रदर्शित नहीं किया।

इसी समुद्रगुप्त ने सेना ले जा कर नर्मदा के उत्तर में संपूर्ण आर्यावर्त पर दिग्विजय की। यह राजा 'कृतांतपरशु', 'अजितराजजेताजित' 'सर्वराजोच्छेत्ता', 'व्याघ्रपराक्रम' और 'पराक्रमांक' जैसे नामों से विख्यात हुआ। विन्सेंट स्मिथ ने इसे भारतीय इतिहास का नेपोलियन कहा है। आर्यावर्त का यह एक प्रबल स्रष्टा था।

इसने विजय प्राप्त की, केवल इतना ही नहीं, बल्कि अश्वमेध किया और 'अश्वमेधपराक्रम' की पदवी प्राप्त की।

इसी समय के आचार-विचार पर शासन करने वाले याज्ञवल्क्य सनातन सूत्र का उच्चारण करते हैं—'दान धर्म का मूल है'। समुद्रगुप्त ने इसे अपने जीवन का लक्ष्य बनाया। उसने अश्वमेध किया इतना ही नहीं, बल्कि विद्यासेवियों को दान देने की भारतीय परम्परा को संस्कार-मंत्र का स्थान दिया। इसके सिक्कों के ऊपर लिखा हुआ मिलता है कि यह "अप्रतिरथ वीर क्षिति को जीत कर अपने सुचरित्र से स्वर्ग को भी जीतता है।" यह चरित्रवान है, कवि है तथा वीणा-वादन कला में भी प्रवीण है। वीणा बजाते हुए इसका चित्र अनेक सुवर्ण मुद्राओं पर आज भी देखने को मिलता है।

इस पराक्रमादित्य के पुत्र का महादंडनायक हरिसेन (हरिषेण) इसकी प्रशस्ति में काव्य रचना की। प्रयाग में वह शिलालेख के रूप में विद्यमान है—

[१]आर्यो हीत्युपगुह्य भावपिशुनैरुत्कर्णितै रोमभिः
सभ्येषूच्छ्वसितेषु तुल्यकुलजम्लाननेनोद्वीक्षितः।
(स्ने)ह व्याकुलितेन वाष्पगुरुणा तत्वेक्षिणा चक्षुषा।
यः पित्राभिहितो नि(री)क्ष्य निखिलां पाह्येव(मु)र्वीमिति॥

इस महाराजाधिराज की महादेवी दत्तदेवी अश्वमेध के समय घोड़े को चँवर उड़ाती हुई सिक्कों के ऊपर आज भी दृष्टिगत होती है।

---

[१] **आनंद से पुलकित हो कर, तत्वदर्शी, स्नेहसिक्त नेत्रों से देख कर जिसको पिता ने (यह) वास्तव में योग्य (है) यह कह कर समस्त पृथ्वी का पालन करने के लिये कहा, और उस समय जिसके सगे-संबंधी उसकी तरफ़ ईर्ष्या से देखते रहे तथा दरबार के सदस्यों ने संतोष की निःश्वासें छोड़ीं। (वह समुद्रगुप्त)**

इस प्रतापी वीर ने पहले से ही अपने सुचरित्र द्वारा जीते हुए स्वर्ग को ई० सन् ३८७ में प्रयाण किया। इतिहासकार मानते थे कि उसके उपरान्त उसका पुत्र चन्द्रगुप्त सिंहासनस्थ हुआ। यह 'परम भागवत', 'सिंहविक्रम', 'परम भट्टार्क' के नामों को धारण करने वाला राजा भारतीय हृदय में विक्रमराज के नाम से अचल स्थान बनाये हुए है। कवि कालिदास इसी विक्रमादित्य का मित्र था यह भी बहुत से संस्कृत विद्वान् सिद्ध करते हैं।

पर समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त दोनों के बीच समुद्रगुप्त के ज्येष्ठ पुत्र रामगुप्त ने गुप्तों का राज्यदंड कुछ समय के लिये अपने हाथ में रक्खा था यह नवीन खोज डॉक्टर सिल्वियन लेवी ने की है। यह रामगुप्त कैसा था इसके नीच कृत्य कैसे थे और यह किस तरह मरा, इस प्रसंग पर 'मुद्राराक्षस' के रचयिता विशाखदत्त ने 'देवी चन्द्रगुप्तम्' नाम का नाटक रचा था। यह नाटक प्राप्त नहीं; पर उसके अवशेष अंशों के एकीकरण से उसमें रहे ऐतिहासिक सत्य का पता लगता है।[१]

इस अप्राप्य नाटक की कथावस्तु में दूसरी ऐतिहासिक और काल्पनिक सामग्री का समावेश कर, नवीन रूप में यह नाटक लिखने का मैंने प्रयत्न किया है।

गुप्तों का युग भारतीय इतिहास में सुवर्ण युग है। इस युग में वीरता, वैभव और विद्या तीनों का संयोग था। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य में इन तीनों की त्रिवेणी थी। जिस प्रकार यूरोपीय इतिहास में 'सीज़र' का नाम धारण करने के लिये दो-दो हज़ार वर्ष तक राजा लड़ मरे, उसी प्रकार 'विक्रमादित्य', 'परम भट्टार्क', और 'राजाधिराज' जैसी पदवी के लिये

---

[१] डॉक्टर आल्टेकर का बिहार और उड़ीसा जर्नल में प्रकाशित लेख। देखिये, केशवलाल ध्रुव का लेख "साहित्य-विवेचन" पुस्तक पहली, "समुद्रगुप्त के क्रमप्राप्त उत्तराधिकारी"। पृष्ठ २२२–२४५।

भारतवर्ष में १२०० वर्ष तक युद्ध चले और जिस प्रकार सीज़र का नाम ज़ार और कैसर सम्राट् के लिये भाषा में प्रचलित है, उसी प्रकार चन्द्र-गुप्त की ये पदवियाँ भी प्रचलित हैं।

याज्ञवल्क्य-स्मृति समस्त आर्यावर्त में तथा वास्तविक अर्थ में मनु-स्मृति से भी अधिक प्राबल्य रखती है। यह स्मृति मिथिला के ब्राह्मण ने समुद्रगुप्त के समय में रची, यह निर्णय यदि सत्य समझा जाय तो इन गुप्त राजाओं ने ही इस स्मृति को धर्म-शासन का रूप देने का प्रयास किया होगा यह मान लेने के स्पष्ट कारण मिलते हैं। साथ ही साथ 'शाकुंतल' और 'मेघदूत' की रचना तथा कितने ही पुराणों और महाभारत की लगभग अंतिम प्रति की रचनाएँ इस राजा के राज्य-काल में हुईं, यह उस समय की सभ्यता की साक्षी हैं।

—कन्हैयालाल मुन्शी

सूची

अंक	पृष्ठ
अंक पहला	३
अंक दूसरा	२५
अंक तीसरा	५९
अंक चौथा	८६

ध्रुवस्वामिनी देवी

[एक अप्राप्त नाटक का नवदर्शन]

स्थल––कुसुमपुर और उज्जयिनी।

समय––ईस्वी सन् ३७० से ३९० के मध्य।

पात्र––जैसे आते जाते हैं, उसी क्रमानुसार।

कालिदास––इक्कीस वर्ष का ब्राह्मण युवक, इस नाटक के उपरांत लगभग चालीस वर्ष में रघुवंश, मेघदूत, शाकुंतल इत्यादि अमर कृतियों का लेखक।

शशिलेखा––ध्रुवदेवी की दासी और माधवी की सखी।

माधवी––वह सुन्दरी जिसके प्रति प्रेम भावना ने शाकुंतल में पुनर्जीवन प्राप्त किया, और जिसका विरह मेघदूत में चित्रित किया गया।

ध्रुवदेवी––पाटलिपुत्र के महाराजाधिराज रामगुप्तदेव की महादेवी और आर्यावर्त के अच्युतदेव की पुत्री।

चन्द्रगुप्त––समुद्रगुप्त पराक्रमदेव का छोटा बेटा और रामगुप्त का छोटा भाई, जिसे हम विक्रमराज के नाम से जानते हैं, वह महापुरुष जिसके विषय में अनेक दन्तकथाएँ प्रचलित हैं; युवराज के रूप में।

रामगुप्त––समुद्रगुप्त पराक्रमदेव का ज्येष्ठ पुत्र; कुसुमपुर––पाटलिपुत्र का चक्रवर्ती नरेश।

मधुरिका, मालिका––रामगुप्त की परिचारिकायें, यवन सुंदरियाँ।

दत्तदेवी––समुद्रगुप्त पराक्रमदेव की पत्नी और रामगुप्त तथा चंद्रगुप्त की माता।

उन्दान—पराक्रमदेव का तथा उसके पुत्र रामगुप्त का महादंडनायक।

रोहल—रामगुप्त का महाश्वपति।

हरिसेन—(शुद्ध रूप, हरिषेण) ध्रुवभूति का पुत्र, दंडनायक, संधिविग्राहक, कवि जिसने समुद्रगुप्त की प्रशस्ति रची और उसे अमर बनाया।

रुद्रसेन—शिवमार्गी परदेशी सौराष्ट्र-नरेश, जिसने पराक्रमदेव द्वारा स्थापित सत्ता का विनाश किया और रामगुप्त को पराजय दी।

गुहसेन—रामगुप्त का सहायक, मधुर भाषी और कपटशील योद्धा।

सांख्याचार्य—एक वृद्ध ऋषि।

वात्स्य—पराक्रमदेव का ब्राह्मण मंत्री और रामगुप्त का महामंत्री, जिसके आधार पर रामगुप्त के राज्य की सत्ता टिकी हुई मानी जाती थी।

याज्ञवल्क्य—स्मृतियों में श्रेष्ठ याज्ञवल्क्य स्मृति के प्रणेता; जिस योगीश्वर ने समुद्रगुप्त द्वारा जीती हुई पृथ्वी को शांति और शुद्धि का मार्ग बताया और शिष्य की दिग्विजय पर धर्म का रंग चढ़ा कर कुसुमपुर को विद्या और संस्कृति का केन्द्र बनाया।

स्कंद—महादेवी के अतिरिक्त किसी दूसरी स्त्री से उत्पन्न पराक्रमदेव का पुत्र।

दमन—स्कंद का मामा।

अंक पहला

[समय—लगभग ई० स० ३८७ के उपरांत। पराक्रमादित्य समुद्रगुप्त जिसे सब 'पराक्रमदेव' के पूज्य नाम से याद करते हैं और जिसकी कीर्ति, शौर्य और तेजस्विता के संस्मरणों से प्रजा तीनों गुणों की पर्याप्त रक्षा करने का प्रयास करती है, वह कुछ महीने हुए स्वर्गारोहण कर गया। ज्येष्ठ पुत्र श्री रामगुप्तदेव मगध की राजधानी कुसुमपुर में राज्य करता है।

चंपावती के अच्युतदेव की कन्या ध्रुवदेवी, महादेवी के पद पर आसीन होती है।

सुराष्ट्र आनर्त और मालवा का महाक्षत्रप रुद्रसेन गुप्तों की सेना के साथ उज्जयिनी की सीमा पर युद्ध कर रहा है। समुद्रगुप्तदेव जीवित था तब से ही युद्ध में गया हुआ रामगुप्तदेव का छोटा भाई चंद्रगुप्त अभी वहाँ से वापिस नहीं लौटा।

स्थल—महादेवी ध्रुवदेवी के अंतःपुर का उद्यान दृष्टिगत होता है। उद्यान के तीन ओर ऊँची दीवारें हैं और एक प्रासाद का पिछला झरोखा दिखायी देता है।

कालिदास आता है।

आज से तीस-चालीस वर्ष बाद वह शाकुंतल या मेघदूत की रचना कर सकेगा यह उसके स्वरूप पर से दिखाई नहीं देता। इस समय तो वह एक मौजी और छैला-सा प्रतीत होता है। बड़ी सुघड़ता से धोती पहने हुए है, छटा से अंगवस्त्र ओढ़े हुए है, केशर का त्रिपुंड लगाये है और तेल डालकर बाल भी सँवार रक्खे है।

एक चंपा के वृक्ष के नीचे वह खड़ा हुआ है और पैरों की अंगुलियों से पृथ्वी पर पड़े हुए चंपा के फूल हटा रहा है।]

कालिदास—(अधीरता से पैर के नीचे फूल को कुचल कर) कब तक मुझे इस तरह खड़ा रखेगी ? ऐसी बातून है ! जैसे-तैसे तो मैं आचार्य के पास से खिसका और यहाँ तो महामाया मिलती ही नहीं। जैसे विधाता वैसे ही सुंदरी—अभागे को अधीर कर देने में ही आनन्द का अनुभव करते हैं। (निःश्वास छोड़ता है)

[शशिलेखा गर्व से आती है। चारों ओर देखती है और पुनः लौट जाती है, वह मानिनी दिखाई देती है। उसने उस समय स्त्रीजनोचित वस्त्र पहन रखे हैं—एक सलूका—पीछे से गाँठ बाँधा जाने वाला; छाती पर आड़ा बँधा हुआ चीनांशुक का टुकड़ा जिसका फुंदा पीछे लटक रहा है; सिर और कन्धे पर एक छोटा-सा उत्तरीय।]

'शशिलेखा ! शशिलेखा !'

शशिलेखा—(हँस पड़ती है) कौन कालिदास ?

कालिदास—शशिलेखा, स्वस्ति ! क्या खोज रही है ?

शशिलेखा—मैंने सोचा था, उद्यान निर्जन होगा।

कालिदास—एकांत में ध्यान कब से करने लगीं ?

शशिलेखा—(भौंह सिकोड़ कर) मैं अपने प्रियतम का चित्र बनाने लगी, तब से ! जब मैं उसका चित्र बनाती हूँ, तब मुझे किसी का मुँह अच्छा नहीं लगता।

कालिदास—सच कहूँ यदि मुझे तुझसे एक भी प्रश्न न पूछना हो तो तेरा मुँह भी मुझे अच्छा न लगे। (शशिलेखा हँस पड़ती है) हँस मत। बता, कौमुदी बिना शशिलेखा किस काम की ?

शशिलेखा—(मटक कर) आग लगे तुम्हारे प्रश्न में ! यहाँ कौन हल करने बैठा है ? खड़े रहो, माधवी को भेजे देती हूँ।

[जाती है]

कालिदास—क्या मिजाज़ है ? ख़ैर। चल दी ! जैसे इसके बिना सृष्टि रसातल ही चली जायगी ! पर इसमें उसका दोष नहीं। मदन अद्भुत है, मदिरा से भी अधिक मादक होता है। इससे प्रेरित होकर दो प्राणी, शिव-शक्ति सदृश कैलाश पर चढ़ कर संसार पर दयासिक्त दृष्टि डालने की इच्छा नहीं करते। उँह ! माधवी को क्या हो गया है ? (निःश्वास छोड़ता है) सागर से अमृत प्राप्त करना आसान है, पर बातून प्रियतमा का अधरामृत मिलना कठिन है।

[चौंक कर उत्साह-पूर्वक देखता है। माधवी—सुंदर, वाचाल और चंचल युवती—दौड़ती हुई कालिदास के पास आती है और नाक पर अंगुली रख कर बोलना आरंभ करती है। वह हाँफ रही है। उसके स्तन उभरे हुए दिखाई देते हैं और उसकी आँखें चमक रही हैं; और उसका प्रियतम, यह सब देख कर वह जिज्ञासा और बोलने की उत्कंठा के बीच सहर्ष झूल रहा है। दोनों के मुख पर प्रणय का परमानंद है। वे नहीं जानते कि ये एक दूसरे के प्रति प्रेमानुभूति की भावनाएँ कुछ वर्षों बाद शाकुंतल और मेघदूत में शाब्दिक पुनर्जीवन प्राप्त करेंगी और अनंत काल तक आने वाली संतानों को प्रणय का पाठ सिखायेंगी।]

माधवी—मेरी बात सुनो !

कालिदास—(उत्सुकता से) पर मेरी बात तो सुन !

माधवी—नहीं, मेरी सुनो, तुम बोलना मत।

कालिदास—पर तू बोलने देती तब न ?

माधवी—(हाथ फैला कर)—पर मेरी बात तो सुनो।

कालिदास—नहीं सुनता। (कान पर हाथ रख लेता है)

माधवी—नही सुनते तो भी बोलूँगी। सुनो, आज महादेवी बहुत नाराज़ हुई हैं।

कालिदास—(भूल से) क्यों ?

माधवी—सुनो, तो कहूँ ?

कालिदास—(हँसकर) कहो, क्यों ?

माधवी—आज महादेवी से मिलने देव आने वाले हैं। और युद्ध से लौटे हुए महाराज चन्द्रगुप्त भी आने वाले हैं। महादेवी बहुत क्रोधित हो गई हैं।

कालिदास—(हँसकर) मैं सुनता रहा। अब तू सुनेगी ?

माधवी—पूरा सुनते ही नहीं !

कालिदास—अच्छा, कह डाल।

माधवी—महादेवी बहुत गुस्सा हुई हैं।

कालिदास—यह बात घनपाठी विप्र की तरह तूने तीन बार कही।

माधवी—तो चौथी बार और सुनो। महादेवी ने व्रत लिया है कि किसी से सहवास न करेंगी लेकिन देव उसे तोड़ना चाहते हैं।

कालिदास—अब पाँचवीं बार फिर वह न कहना।

माधवी—(मुँह चढ़ा कर) जाओ तब, ऐसा करोगे तो मैं फिर कुछ भी नहीं कहूँगी।

कालिदास—नहीं, नही, इस प्रकार बुरा क्यों मानती है ? पर अब मेरी बात ज़रा सुनेगी ?

माधवी—देखो, ऐसी बात कहते हो ! भला मैंने किसी दिन इनकार किया है ?

कालिदास—तब तुझे आस-पास कोई दिखाई देता है ?

माधवी—(चारों ओर देख कर) नहीं।

कालिदास—(आँखें नचा कर) तब पास आ, और—

माधवी—(मुँह मटका कर) ना। तुम क्या ख़बर लाये हो, वह बतलाओ फिर उसका मूल्य।

कालिदास—कोई आ गया तो ? मैं सब कुछ कह दूँ और उसके दाम रह जायें तो ?

माधवी—(एकदम कालिदास का चुंबन लेकर) लो, हो गया ? अब कहो।

कालिदास—सुन !

माधवी—यह तो मैं कब से सुन रही हूँ।

कालिदास—महाराज चंद्रगुप्त मेरे बाल-मित्र हैं।

माधवी—तुम यह बात मुझसे रोज़ कहते हो।

कालिदास—आज जब वह आये तो मैं उनके पास गया; हम दोनों गले मिले।

माधवी—(मुँह मटका कर) अब आना किसी दिन मुझसे बात करने !

कालिदास—अरी पगली ! पराक्रमदेव द्वारा विजित पृथ्वी को धर्म से द्विज बना देने वाले आचार्यदेव; शास्त्रों को चुटकियों में रखने-वाले महामंत्रीवर वात्स्य; राजनीति को दासी बना कर रखनेवाले कुमार अमात्य; और सैकड़ों युद्धों में कीर्ति प्राप्त उन्दान का पुत्र आम्रकर्दम, ऐसे चार दिग्गज देखते रहे और महाराज मेरे गले से लिपट गये और मुझसे धीमे से पूछा 'कोई काव्य रचा है ?'

माधवी—(प्रशंसा से) आर्यपुत्र ! तुम्हें देख कर न जाने क्यों सब पागल हो जाते हैं।

कालिदास—पर वह क्यों आये हैं, यह मालूम है ?

माधवी—तुम उनके परम बाल-मित्र हो, तुम्हीं बताओ न !

कालिदास—प्रिये ! सुन, जिस प्रकार मातंग से मद झरता है, उसी प्रकार मेरे मित्र में वीरता झरती है। (धीमे से) देव को यह उज्ज-यिनी ले जाने के लिये आये हैं—युद्ध के लिये।

माधवी—(ज़ोर से हँस कर) देव युद्ध करेंगे ! उनसे पहले तो मैं करूँगी, पर वहाँ देव की क्या आवश्यकता पड़ी ?

कालिदास—एक लंबी अवधि के उपरांत वापिस आये हुए मेरे

मित्र का यह विचार है कि यदि देव उज्जयिनी जायँ तो शकराज से भय-भीत सेना में एक नवीन जोश का संचार हो। वह अभी यह नहीं जानता कि दिन के बाद जैसे रात्रि वैसे ही पराक्रम के बाद कायरता आती है।

माधवी—फिर तुमने सब कुछ समझा दिया न ?

कालिदास—हाँ, और साथ ही साथ महादेवी की बात भी की।

माधवी—उन्होंने दो वर्ष बाद पाटलिपुत्र में पैर रक्खा है, अतः महादेवी को देखा भी न होगा !

कालिदास—पराक्रमदेव के जीवनकाल में सौराष्ट्र के विरुद्ध लड़ने जाते समय, आचार्यदेव के यहाँ चंपावती में मेरा मित्र रहा था, तब महा-देवी को कदाचित् देखा हो। ध्रुवदेवी का कैसे विवाह हुआ, कैसे रहीं, और एकांत वास क्यों करती हैं, ये सब बातें मैंने कहीं।

माधवी—हाय ! हाय ! तब तो मेरी बात भी की होगी ! अब आना !

कालिदास—(चंपा का फूल तोड़ कर माधवी की तरफ़ फेंकता है) श्रोत्रिय को वेदोच्चार, उसी प्रकार मेरे लिये तेरी बात। इसके बिना रहा ही नहीं जाता।

माधवी—और मुझसे भी तुम्हारे बिना नहीं रहा जाता। आर्य-पुत्र ! यह सिंह का सूर्य कब उतरेगा ?

कालिदास—देवी, यह उतरेगा अवश्य और मै तुम्हारा पाणिग्रहण भी अवश्य करूँगा।

माधवी—वह महादेवी आ रही है।

कालिदास—माधवी, देख देख, यह बेचारी गर्विष्ठ महादेवी इन भव्य प्रासादों में इस प्रकार अकेली, परिश्रांत और उदास फिरती हैं—परलोकवासी पराक्रमदेव की आश्रयविहीन राज्यलक्ष्मी के सदृश। (देखता रहता है)

माधवी—महादेवी को इस अवस्था में देखती हूँ तो मेरी आँखों में

आँसू आ जाते हैं। दिन निकलता है और छिप जाता है, पर यह मुश्किल से ही चार वाक्य मुँह से निकालती होंगी।

कालिदास—कैसी देह, कैसी आत्मा, और कैसा कर्म ! देख तो सही, कैसी भव्य और करुण मूर्ति ! कैसी क्लान्त गति ! जैसे उदित प्रभात में भूली हुई फीकी, कान्तिहीन शशिलेखा।

[ध्रुवदेवी धीरे-धीरे आती है। उसके विशाल नेत्र निश्चेतनता बताते हैं। उसका उदास और कठोर बना हुआ मुख वातावरण को खेद के भार से दुःसह बना रहा है, उसके चरणों की गति धीमी है। उसके अंग-प्रत्यंग में निराशामय गौरव और पाषाणवत् सौंदर्य निखरा हुआ है। वह धीमे-धीमे उद्यान में आ रही है।]

कालिदास—(धीमे से) भगवान् भोलानाथ, इसे बनाया, तो इसके भोगनेवाले का सृजन क्यों नहीं किया ?

माधवी—(धीमे से) मुझे मुँह माँगा मिला, ऐसा इसे भी मिला होता !

शशिलेखा—(दौड़ती हुई आती है) माधवी, सुना ?

माधवी—**कालिदास**—(दोनों एक साथ) क्या है ?

शशिलेखा—तेरे यहाँ ऋषि आये थे न ?

माधवी—हाँ, देव के पास गुरुदक्षिणा लेने के लिये।

शशिलेखा—देव ने उन्हें महल से निकाल बाहर किया।

कालिदास—क्या उस श्रोत्रिय का अपमान किया ?

शशिलेखा—हाँ।

[सब विस्मय से एक दूसरे की ओर देखते हैं। इतने में ध्रुवदेवी वहाँ आती है। सब उसकी ओर सम्मान-पूर्वक देखते हैं। ध्रुवदेवी आगे आती है और दोनों युवतियाँ प्रणाम करती हैं।]

शशिलेखा—स्वस्ति भट्टिणी !

ध्रुवदेवी—(म्लान स्वर से) किसको निकाल बाहर किया ?

शशिलेखा—ब्रह्मारण्य से सोमदत्त श्रोत्रिय गुरुदक्षिणा माँगने आये थे उनको।

ध्रुवदेवी—(थोड़ी देर बाद ऊपर देखती है) शशिलेखा, जा उनसे कह कि यहाँ पधारने की कृपा करें।

[शशिलेखा चुपचाप जाती है।]

कालिदास—(हँस कर खुश करने का प्रयत्न करते हुए) स्वामिनी, कुंतलेश्वर के उपहार आये हैं और वहाँ अपना संधिविग्रहिक जाने वाला है। (ध्रुवदेवी चुपचाप देखती रहती है) वाराणसी में भगवान् संकर्षण के मंदिर का वास्तु-संस्कार करने के लिये भगवती जाने वाली हैं। कल से शतसहस्री संहिता[1] का पारायण—(ध्रुवदेवी ज़रा तिरस्कार से हँसती है, जैसे क्षोभ से ज़रा सहम कर खुश करने का प्रयत्न करती हो) स्वामिनी, एक बात तो जान गयी होंगी। महाराज चंद्रगुप्त उज्जयिनी से आये हैं और गुप्तकुल की राजलक्ष्मी के दर्शन की अभिलाषा रखते हैं।

ध्रुवदेवी—दर्शनाभिलाषियों की मैं देवी नहीं।

कालिदास—भट्टिणी, आपने तो उनको देखा भी नहीं।

माधवी—आप देखेंगी तो खुश हो जायेंगी, ऐसा सुन्दर व्यक्ति है। (ध्रुवदेवी सिर हिलाती है) स्वामिनी, आप देखें तो सही। सिंह से लड़ते हैं तो उसके प्राण ही निकाल लेते हैं।

ध्रुवदेवी—(शांति से) इस कुल में सब प्राण लेने वाले ही पैदा हुए हैं।

कालिदास—पर महाराज तो कार्तिकेय के अवतार हैं।

चन्द्रगुप्त—(बाहर से आवाज़ आती है) मेरे लिये आज्ञा नहीं!

शशिलेखा—(बाहर से गला घुट रहा हो ऐसी आवाज़ में) भट्टिणी!

[ध्रुवदेवी कुछ चुपचाप गुस्से से देखती रहती है।]

---

[1] महाभारत।

कालिदास—आये।

[चन्द्रगुप्त शशिलेखा के साथ आता है। बोलने के लिये तत्पर शशिलेखा के मुँह पर उसने हाथ रख दिया है। यह चौबीस वर्ष का सुंदर और ऊँचे क़द का युवक है। उसके घुँघराले बाल इसके कंधे पर फैले हुए हैं। उसकी विशाल आँखों में निश्छलता और ममता है। उसका मुख हँसी से ओत-प्रोत है। वह बेधड़क चला आ रहा है। कुशान राजाओं जैसी टोपी सिर पर ओढ़ रक्खी है, शरीर पर लोह-खंड के छोटे गोल टुकड़ों से मँढ़ा हुआ चमड़े का बख्तर पहन रक्खा है। पैरों में भी वैसे ही बंधनों से जकड़ी हुई सुरवाल का जोड़ा पहन रक्खा है। विदेशी कुशानों की सत्ता और समृद्धि पर अधिकार कर पराक्रमदेव ने उनकी युद्ध-पद्धति ग्रहण की थी यह इस वेश-भूषा से स्पष्ट दिखाई दे रहा था। उसके हाथ में एक रेशमी पताका से युक्त भाला है।]

चन्द्रगुप्त—महादेवी, क्षमा करें यह चार अंगुल की लड़की मुझे आने नहीं दे रही थी। (ज़ोर से हँसता है)

ध्रुवदेवी—(जैसे अधिक तेज से आँखें चकाचौंध हो गयी हों इस प्रकार आँखें टिमटिमा कर क्षोभ से छाती पर हाथ रखती है, फिर ओठ मूँद कर परिचित मुख को अपरिचित रीति से देखती है। धीमे से) महाराज !

चन्द्रगुप्त—(हँस कर उत्साह से) आज दो वर्ष में पहली बार मुझे यहाँ पैर रखने और स्वामिनी की कृपा-याचना करने का अवसर मिला। उस पर यह चिबल्ली लड़की कहे कि बाहर खड़े रहो।

[शशिलेखा के सामने मज़ाक में खड्ग खींचने का अभिनय करता है और हँसता है। ध्रुवदेवी स्वस्थता प्राप्त करने का प्रयत्न करती है, पर बोलती नहीं]

स्वामिनी, परसों तो मैं वापिस चला जाऊँगा। और तुम्हारी चरण-वंदना किये बिना चला जाऊँ ? और (कालिदास को) यह मित्र—

कालिदास—महाराज की जय !

चन्द्रगुप्त—यही तुम्हारी—(माधवी सिर झुका लेती है)

कालिदास—मैंने कहा नहीं था कि हम शंकर-पार्वती की तरह एक दूसरे को—

चन्द्रगुप्त—(ज़रा हँस कर) या फिर दो पक्षियों की तरह बैठ कर चकचक करते ही रहते हो।

कालिदास—महाराज !

चन्द्रगुप्त—(हँस कर) इस ब्राह्मण को मैं जानता हूँ। हम बालक थे तभी से यह मुझसे बहाना बना कर माधवी के साथ घूमने भाग जाता था। (वह ध्रुवदेवी की ओर देखता है और अटकता है। देवी स्वस्थ होकर पत्थर की प्रतिमा की तरह श्वेत नयनों से देखती रहती है) स्वामिनी, स्वामिनी, इतनी अधिक गंभीर किस लिये हो ? दो वर्ष में शकों के सिर काट-काट कर मैं घर आया और इस प्रकार तुम गंभीर-सी बन कर मितभाषिणी बनी रहो, भला यह कैसे हो सकता है ? पृथ्वीपति के पुत्र के अधिकार से या देव का भ्राता होने के गर्व से मैं आज्ञा देता हूँ।

कालिदास—स्वामिनि ! बुरा मत मानना। यह हमेशा ऐसे ही किया करते हैं, जैसे पृथ्वी इन्हीं की हो।

चन्द्रगुप्त—(हँसकर) हाँ, पृथ्वी तो हमारी—पराक्रमदेव के पुत्रों की ही है, कविराज ! (एक वृक्ष के थाले पर बैठता है) स्वामिनी, इस शिलातल पर बैठो। (ध्रुवदेवी स्वस्थता तथा सुंदरता से शिलातल पर बैठती है) स्वामिनी ! मैं क्यों आया हूँ यह जानती हो ? पहले जो शक पिताजी के नाम से काँपते थे वे अब निर्भय हो गये हैं और साथ-साथ शक्तिशाली भी। सौराष्ट्रनाथ महाक्षत्रप रुद्रसेन सेना लेकर उज्जयिनी पर चढ़ आया है, अतः अपनी सेना को देव की आज्ञा के प्रोत्साहन की आवश्यकता है। (ध्रुवदेवी तिरस्कार से देखती रहती है) मैं उनको उज्जयिनी ले जाने के लिये आया हूँ।

ध्रुवदेवी—तुम स्वयं यह काम नहीं कर सकते ?

चन्द्रगुप्त—(हँस कर) मैं बेचारा चन्द्रगुप्त ! मैं कोई महाराजाधिराज रामगुप्तदेव थोड़े ही हूँ ? (ध्रुवदेवी निःश्वास छोड़ती है) पर देखो तो सही, भाई को मुझसे मिलने की फुरसत ही कहाँ है ?

कालिदास—महाराज, भला वे यहाँ किसी दिन आते हैं ?

चन्द्रगुप्त—क्यों नहीं आयेंगे ? स्वामिनी, उन्हें भेजना, यह तुम्हारा काम।

ध्रुवदेवी—(खेद से सिर हिलाते हुए) नहीं।

चन्द्रगुप्त—(उत्साह से) नहीं क्यों ? महादेवी, समस्त जगत का भार गुप्तकुल की महादेवी—ध्रुवदेवी (तिरस्कार से जरा हँसती है। चन्द्रगुप्त ज़रा रुक कर) दोनों पर—देव और महादेवी पर।

कालिदास—जैसे विष्णु और लक्ष्मी पर—

चन्द्रगुप्त—(चिढ़ाते हुए) जैसे समस्त भार तुझ पर और माधवी पर है वैसे ही। स्वामिनी, तुम तो वीर और वीरांगना की पुत्री हो। तुम्हारी माता की प्रशंसा मैंने सुनी है; और इस कुल में कुमारदेवी और दत्तदेवी का स्थान तुम सुशोभित कर रही हो। इस समय श्री गुप्तकुल की कीर्ति पर कलंक आ सकता है, फिर तुम इस प्रकार क्यों देख रही हो ?

ध्रुवदेवी—(नीचे देख कर धीमे से) नष्ट कीर्ति के संस्मरणों में मुझे आनंद नहीं आता।

चन्द्रगुप्त—(विस्मय से) नष्ट कीर्ति ! स्वामिनी, पराक्रमदेव की ज्वलंत कीर्ति देखकर आज सूर्य स्थिर हो जाता है और देव काँप उठते हैं। तुम ऐसा क्यों कहती हो ? तुम्हारा स्थान तो समरांगण में है।

ध्रुवदेवी—(खेद से, पर दृढ़ता से) मेरा स्थान यहीं है। (कटुता से) गुप्तवंशज के महाप्रासादों में।

चन्द्रगुप्त—(समझाते हुए) स्वामिनी, भूलो मत। ये महाप्रासाद तो शोभा के हैं। कुमारदेवी ने आठ वर्ष समरांगण में बिताये, दत्तदेवी ने कितने ही वर्ष तक पराक्रमदेव के साथ विजय-यात्रा की।

ध्रुवदेवी—(ओठ पीस कर सिर हिलाती है) मैं उन-सी नहीं।

चन्द्रगुप्त—(हिम्मत से पास आ कर) तुम इन सब से अलग होना चाहती हो?

कालिदास—(माधवी से) चल।

माधवी—भट्टिणी, आज्ञा हो तो गंध और माला तैयार करूँ?

(ध्रुवदेवी माथा हिला कर हाँ कहती है।)

कालिदास—और मैं भी जाता हूँ।

चन्द्रगुप्त—(हँसता है) वयस्य! माधवी गई और तू रह जाय? जा।

[कालिदास और माधवी चले जाते हैं।]

स्वामिनी, तुम क्यों ऐसी हुई जा रही हो? इस उम्र में यह एकांत-वास किस लिये? यह मौन क्यों? यह वैराग्य कैसा? किस लिये? यह सब देख कर मैं स्तब्ध रह गया हूँ। क्या महाभागवतों का पुण्य समाप्त हो गया?

ध्रुवदेवी—(ज़रा खिसक कर) कौन कहता है?

चन्द्रगुप्त—(खड़ा हो कर हाथ जोड़ता है) स्वामिनी, इस प्रकार क्यों बोलती हो? मैं तुम्हें जानता हूँ—अच्छी तरह। तुम्हारे परिणय से पहले मैं चंपावती में अच्युतदेव के यहाँ रहा था। स्वामिनी, उस समय तुमसे मिला था तब तुम शौर्य और वाणी से विद्युल्लेखा सदृश चमकती थीं (ध्रुवदेवी नीचे देख कर निःश्वास छोड़ती है) इस समय तुम्हारे तेज और प्रताप का विश्व याचक है तब यह सब किस लिये? मुझे बताओ।

ध्रुवदेवी—(गर्व से) मुझे क्या होता है?

चन्द्रगुप्त—स्वामिनी, बताओ, मुझे बताओ। तुम्हारे और भाई के बीच क्या बात हो गई है ? तुम्हारे श्रेय और सुख दोनों का मैं भागीदार हूँ। तुम समस्त जगत की राज्यलक्ष्मी इस प्रकार बोलोगी तो चौदह भुवनों का क्या होगा ? याद है ? चंपावती में तो भगवती और कुमारदेवी तुम्हारी आदर्श थीं।

ध्रुवदेवी—(वेदना से) आज की बात ही आज ठीक है।

चन्द्रगुप्त—ध्रुवदेवी, भाई और तुम्हारे बीच यदि टूट गई हो तो मैं जोड़ दूँगा।

ध्रुवदेवी—(गर्व से और गुस्से में) मुझे जोड़ने वाले की ज़रूरत नहीं, जैसी हूँ वैसी ही ठीक हूँ।

चन्द्रगुप्त—(ध्रुवदेवी का गर्व समझ कर) क्षमा करो। मेरे मुँह से निकल गया। स्वामिनी, तुम दुखी हो यह मैं जानता हूँ। इस दुःख का कारण गंभीर है, यह मैं समझता हूँ। पर मुझे यथाशक्ति प्रयास नहीं करने दोगी ? तुम समझती होगी कि हम सब को श्री गुप्तकुल के पराक्रम और कीर्ति की पड़ी है और तुम्हारी किसी को पर्वाह नहीं ! (आवेश में) कहो, महादेवी कहो !

ध्रुवदेवी—अच्युतदेव की पुत्री केवल सुनती है कहती नहीं।

चन्द्रगुप्त—पर ऐसी बात क्या है ? मुझसे कहो तो सही ! किसी से कहने की बात न हो तो मेरे मुख से एक भी अक्षर नहीं निकलेगा और कल तो मैं चला ही जाऊँगा। तुम्हें क्या दुःख है ?

[ध्रुवदेवी शांति से दूर हट कर गर्व से देखती है]

माधवी—(दौड़ती हुई आती है) भट्टिणी ! महाराज ! देव पधारे हैं।

[ध्रुवदेवी ओठ मीच कर स्वस्थ होती है]

बंदीजन—(बाहर से)

ज्वालामाल बनी जले अरिकुले, औ' मित्र के वृन्द में,
शीतल चंदन की सदा वही रहे जिसकी यशश्चन्द्रिका;
सतत उन्नत कीर्ति के ध्वज सदृश श्रीगुप्तवंश रहे
वह श्रीपौत्र नरेन्द्रचन्द्र-महिषी, देवी कुमारी भली—
डुबाकर उपमान सब स्वसलिले लाँघ सीमा अनेकों,
गरजे देव समुद्रगुप्त अब भी उस लोक, इस लोक में,
उनका पुत्र, सुरेन्द्र का प्रतिरथी सन्नीति औ शौर्य में,
वह राजेन्द्र श्री रामगुप्त, शरण आ पड़ा रक्षा करो।

कृतांतपरशु देव अश्वमेधपराक्रम।
पराक्रमांक राजेन्द्र शोभो पुत्रपराक्रम से॥

कंचुकी—(बाहर से) महाराजाधिराज, देव! इस ओर महाभागवत! इस ओर!

[रामगुप्त आता है। मुकुट, चीनांशुक और आभूषणों से अलंकृत। पराक्रमदेव की कीर्ति का यह वारिस पान चबाते हुए आ रहा है। उसने पीतांबर पहन रखा है। वह क्षीणकाय है। उसकी निराशामय आँखों के आसपास की त्वचा काली पड़ गई है। उसके बाल बिखरे हुए हैं। उसके मुख पर तिरस्कारयुक्त हास्य है। उसकी चाल में जरा लड़खड़ाहट का आभास होता है। उसके पीछे-पीछे दो यवन सुंदरियाँ आ रही हैं; एक के हाथ में मयूरपुच्छ का पंखा है; दूसरी के हाथ में पीकदान है। पीछे कालिदास और माधवी आते हैं। ध्रुवदेवी हाथ जोड़कर माथा नवाँ कर बड़बड़ाती है।]

चन्द्रगुप्त—(जा कर दंडवत करता है) स्वामी, भाई तुम्हारी जय हो, जय हो!

रामगुप्त—(दाँत पर जीभ फेर कर) महादेवी! मैंने कहलवाया था कि मैं आ रहा हूँ, तो फिर मना क्यों करा भेजा? (तिरस्कार से)

यह कौन ! तू यहाँ कहाँ से, चन्द्र ? मैंने गुहसेन के हाथ नहीं कहलवा भेजा था कि मुझे अभी फ़ुरसत नहीं ?

चन्द्रगुप्त—(गर्व से देख कर) स्वामी, आपको—पराक्रमदेव के पुत्र को, युद्ध का संदेश सुनने की फ़ुरसत नहीं ?

रामगुप्त—(हँस कर) वत्स, तू नया आया है, अतः क्षमा का पात्र है। सुन अपने आनंद में हम किसी को विक्षेप नहीं डालने देते।

चन्द्रगुप्त—(अधीरता से) स्वामी, यह क्या कह रहे हैं ?

रामगुप्त—वत्स, घबरा मत, पराक्रमदेव के दिन गये, अब जगत् का नाथ मैं हूँ।

चन्द्रगुप्त—पर इस तरह कब तक जगत् के नाथ रह सकोगे ?

रामगुप्त—(हँस कर) उसकी चिंता मत कर। चार पीढ़ियों के पराक्रम द्वारा विजित पृथ्वी कोई तो भोगेगा ही ?

चन्द्रगुप्त—(ध्रुवदेवी की ओर दृष्टि डाल कर) पर मैं तो आपको युद्ध में ले जाने के लिये आया हूँ। क्षत्रप रुद्रसेन ने आक्रमण किया है। महादंडनायक को और अधिक सेना की आवश्यकता है; और सबसे अधिक आवश्यकता आपकी है। आप जब तक नहीं पहुँचेंगे तब तक सेना में विजयोत्साह नहीं आ सकता।

रामगुप्त—(हँस कर) वत्स, पराक्रमदेव हमेशा कहा करते थे कि उनकी कीर्ति की रक्षा होगी, तो तुझसे; तू उनकी सेना को प्रेरित कर, मैं उनकी राज्यलक्ष्मी का भोग करूँगा। (खिलखिला कर हँसता है) महादेवी ! क्यों ठीक है न ? मालिका, मधुरिका, ठीक बात है न ?

चन्द्रगुप्त—(क्रोध रोक कर) इसका मतलब यह कि आप नहीं चलेंगे ?

रामगुप्त—अरे भले मानस ! अगर मैं चला जाऊँगा तो फिर तू क्या करेगा ? उन्दान क्या करेगा ? वापिस जाय तो उन्दान से कहना कि महाभागवत अब तक पृथ्वी के विजेता थे, अब भोक्ता हो गये हैं।

वत्स, तू तो जैसा था वैसा का वैसा ही रहा; लड़-लड़कर जीवन बिता दिया, पर तेरे जी को शांति नहीं मिली !

चन्द्रगुप्त—पर आपको चलना ही पड़ेगा।

रामगुप्त—(हँस कर) जा जा !

चन्द्रगुप्त—(ज़िद से) मैं आपको ज़रूर ले चलूँगा। आपको चलना पड़ेगा और स्वामिनी को भी चलना पड़ेगा।

रामगुप्त—(धूर्तता से) इसीलिये यहाँ आया होगा ? व्यर्थ का प्रयास छोड़ दे, व्यर्थ का प्रयास ! मालिका, यह मेरा पुष्पहार रख तो। (शशिलेखा आती है) कौन शशिलेखा ? कहाँ से दौड़ती हुई आयी ?

शशिलेखा—स्वामी की जय ! भट्टिणी की जय ! भट्टिणी, आचार्य-देव से मैंने आपका संदेशा कहा था, उन्होंने पूज्य श्रोत्रिय को यहीं भेज दिया है। वह आ रहे हैं।

[एक नवयुवक श्रोत्रिय आता है और खड़ा रहता है। उसने वल्कल पहन रक्खा है]

रामगुप्त—शशिलेखा (भौंह सिकोड़ कर) इसको यहाँ क्यों बुलाया ? सबेरे मैंने इसे निकाल दिया था न ?

चन्द्रगुप्त—(चरण-वंदना कर) विप्रवर ! प्रसन्न हों !

ध्रुवदेवी—(चरण-वंदना कर) आर्य ! वंदना करती हूँ।

श्रोत्रिय—विजयी हो कुमार, स्वस्ति भवति !

रामगुप्त—अरे ओ ! यहाँ तुझे किसने बुलाया ?

ध्रुवदेवी—(गुस्से में ऊपर देखती हुई) मैंने बुलाया।

श्रोत्रिय—(गौरव से) राजन् ! गुरु का भेजा हुआ मैं यहाँ आया, मुझे मालूम नहीं था कि अश्वमेध पराक्रमदेव का स्वर्गवास हो गया है। जगत् का छत्र आज किसके सिर पर है, अगर यह मालूम होता तो मैं कुसुम-पुर में पैर भी न रखता।

चन्द्रगुप्त—(हाथ जोड़ कर) तपोधन, कृपा कर कहिये, कैसे आना हुआ ?

श्रोत्रिय—गुरु की आज्ञा से गुरुदक्षिणा माँगने आया था। अब वापिस जा रहा हूँ।

चन्द्रगुप्त—(चारों ओर आकुलता से देख कर) आप पराक्रमदेव के पास गुरुदक्षिणा लेने आये और खाली हाथ लौट जायँ। विप्र-श्रेष्ठ ! (कान में से कुंडल और गले में से हार निकाल कर देता है) श्रोत्रियों को प्रसन्न करने का सद्भाग्य किसे मिलता है ? यह स्वीकार कीजिये और जाकर गुरुजी से कहियेगा कि श्रीगुप्तवंश के पृथ्वी पर शासन करते हुए भला कोई श्रोत्रिय कुसुमपुर से खाली हाथ जा सकता है ? (ध्रुवदेवी की ओर देखता है, ध्रुवदेवी ज़रा मुसकाती है। हाथ जोड़ कर) आपको यह तुच्छ—

श्रोत्रिय—(आशीर्वाद देते हुए) नहीं वत्स, बहुत हुआ। अपने पिता की कीर्ति के अधिकारी बनो। भवति ! कल्याण हो !

[चन्द्रगुप्त, ध्रुवदेवी और रामगुप्त के सिवाय सब चरण-स्पर्श करते हैं। श्रोत्रिय जाता है।]

रामगुप्त—(तिरस्कार से) मूर्ख, पता है तेरे इस हार और कुंडल का क्या होगा ? इससे यह गउयें रक्खेगा और उम्र भर का झगड़ा पाल लेगा।

चन्द्रगुप्त—(तिरस्कार से काँपती हुई ध्रुवदेवी की तरफ़ देख कर) भाई, आपको हो क्या गया है ? योगीश्वर याज्ञवल्क्य का सिखाया हुआ राजधर्म इतने में भूल गये ? विप्र को दिया हुआ धन ही राज्य की अक्षय निधि है। इसकी गायें हमारी कामधेनु होंगी; इसका जीवन हमारी मूर्तिमान कीर्ति होगी; इसका वेदोच्चार हमारा मोक्ष होगा।

रामगुप्त—(हँस कर) ठीक है ! आचार्य ऐसा न सिखायें तो पूछे कौन ?

चन्द्रगुप्त—(अधीरता से) आचार्य का तिरस्कार ! यह योगेन्द्र न होता तो हमारे कुल का ही भाव कौन पूछता ? पराक्रमदेव क्या कहते थे वह भी भूल गये ? "जहाँ आचार्यदेव की स्मृति विचरण करेगी वहीं श्रीगुप्तकुल की कीर्ति भी जायगी।"

रामगुप्त—(हँसकर) और इन सब बातों में तुझे विश्वास है ? (तिरस्कार से) तू तो जैसा था वैसा ही रहा। वत्स, अब तू लौट जा। युग बदल गया है। चन्द्र, मैंने तुझसे क्या कहा था ? अब श्रीगुप्त का राजदंड मेरे हाथ में है।

चन्द्रगुप्त—(अधीरता से) हाँ, मैं जानता हूँ। पर आप न जानते हों तो जान लें कि यह महादंड पराक्रमपिपासु और धर्मरत है। जो सम्राट् इसे ग्रहण करेगा उसकी बिना पराक्रम किये और धर्म का संरक्षण किये मुक्ति नहीं।

रामगुप्त—घबराओ मत, वत्स, पराक्रम करनेवाले जब मुझे आवश्यकता होगी बहुत से मिल जायँगे।

चन्द्रगुप्त—(तिरस्कार से) ये शब्द आपके मुँह से !

रामगुप्त—(हँसकर) हाँ, मधुरिका, मेरा मुँह सूखा जा रहा है, पान दे। (मधुरिका के गाल पर चौंटी काटता है) देवी, आज से फिर ऐसा संदेशा न भेजना। आज, मैं रात यहीं व्यतीत करूँगा।

ध्रुवदेवी—(एकदम गर्व और कठोरता से ऊपर देख कर) इस कृपा के लिए मैं योग्य नहीं।

रामगुप्त—(उद्धतपन से हँस कर) वह तो मै जानता हूँ कि तुम....। यहाँ आओ, बैठो। (अपने पास के स्थान की ओर संकेत करता है।)

चन्द्रगुप्त—(ध्रुवदेवी के क्रोध भरे मुख की ओर देख कर समझ जाता है) स्वामी, मैं कल उज्जयिनी चला जाऊँगा। आपको मेरे साथ चलना पड़ेगा। महादेवी चलने के लिये तैयार है।

कंचुकी—(बाहर से) भगवती, इस ओर पधारिये, इस ओर !

[भगवती दत्तदेवी आती है। दत्तदेवी तोते की सी नाक वाली, सशक्त सत्तर वर्ष की वृद्धा है। उसने सादे, सफ़ेद कपड़े पहन रक्खे हैं और गले में माला धारण किये हुए है। उसकी मुखमुद्रा पर से यह प्रतीत होता है कि यह जवानी में सुंदर रही होगी और इसने जीवन भर कभी भी सिर न झुकाया होगा। प्रचंड इच्छाशक्ति वाले पति की जीवन भर सेवा की और परिणाम-स्वरूप उसके अभेद्य गौरव के पीछे कोमलता और क्षोभ के चिह्न दिखाई देते हैं।]

रामगुप्त—(हाथ जोड़कर) माता, आओ, पधारो।

चन्द्रगुप्त—(प्रणाम कर) माता, प्रसन्न हों।

ध्रुवदेवी—(प्रणाम कर) भगवती, मेरी वंदना स्वीकृत हो।

दत्तदेवी—वत्सो, आयुष्मान हो।

[रामगुप्त पास बैठता है]

चन्द्रगुप्त—अंबा, मैंने भाई से बात की, पर यह उज्जयिनी चलने के लिये इंकार करते हैं।

दत्तदेवी—(गौरव से) क्या, इंकार करता है! क्यों?

रामगुप्त—चन्द्र, मालूम होता है इतनी-सी देर में इन सब के पास पहुँच भी गया तू।

चन्द्रगुप्त—मैं तो सीधा पहले आपसे ही मिलने आया था, पर आपको फ़ुरसत नहीं थी; फिर क्या करता?

दत्तदेवी—(रामगुप्त से) वत्स, तुझे जाना पड़ेगा। तू जायगा तभी अपनी सेना में जीवन आयेगा और क्षत्रप रोका जा सकेगा।

रामगुप्त—(दाँत पीसकर) अंबा, मैंने तुमसे कुछ पूछा था? मुझे नहीं जाना, बस हो गया?

दत्तदेवी—पर वत्स, तेरे पिता की कीर्ति कलंकित हो जायेगी।

रामगुप्त—ओ भगवन्! इस सिंहासन पर बैठ कर मैंने पराक्रम-देव की कीर्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं सुना। यह कीर्ति मुझे नहीं

उठने देती और न मुझे कोई इसे भुलाने ही देता है, (सब क्रोध से देखते हैं। चन्द्रगुप्त और ध्रुवदेवी एक दूसरे की ओर देखते हैं) एक बार स्पष्ट कह दूँ ? मैं मरे हुओं की कीर्ति के लिये राज नहीं करता, अपने आनंद के लिये करता हूँ। इस चंद्र को कीर्ति चाहिये तो भले ही यह कट मरे। मैंने रोका थोड़े ही है ? पर मुझे यह पंचायत अच्छी नहीं लगती।

[पीकदान में पिचकारी मार कर दूसरा पान खाता है।]

दत्तदेवी—वत्स, दुनिया यह बात सुने तो क्या कहे ?

रामगुप्त—तो मैं कहूँगा कि मैं अपनी रुचि के अनुसार चलूँगा, और किसी तरह नहीं।

दत्तदेवी—(खेद से) बेटा ! बेटा ! तेरे इन शब्दों से मेरे हृदय में आग उठती है।

रामगुप्त—उठने दो ! इसमें नवीनता नहीं। पराक्रमदेव ने बुरी आदत डाल दी है। जीवन भर वह तुमको साथ लेकर फिरते रहे, न खाया न पिया और न आनन्द ही लूटा। इसमें मेरा दोष है ?

चन्द्रगुप्त—(भयंकर आवाज़ से) बहुत हो चुका भाई ! खबरदार जो पराक्रमदेव के विषय में एक भी अपमान-कारक शब्द कहा ! तुम्हारा और मेरा पिता—आर्यकीर्ति का आदित्य—जिसके घोष से तीनों भुवन काँपते थे उसके विषय में एक भी कठोर वचन मेरे सुनते हुए न बोलना। दूसरा कोई बोला होता तो.....तुमसे उनके पराक्रम न सुने जा सकें तो कान बंद कर लो। पर यह महात्मा न होता तो समस्त पृथ्वी का राजदंड तुम्हारे हाथ में न आता।

रामगुप्त—(तिरस्कार से) मैं जानता हूँ, तेरी चलती तो तू कब का ले लेता।

दत्तदेवी—(भ्रूभंग कर) वत्स, तू ऐसा बोलता है, तो मैं सोचती हूँ कि मैंने तुझे व्यर्थ जन्म दिया।

रामगुप्त—अब क्या ? हो गया सो हो गया। मधुरिका, यहाँ

कोई शांन्ति से बैठने दे ऐसा नहीं लगता। यहाँ से चलें। अंबा, मैं जा रहा हूँ।

दत्तदेवी—तू उज्जयिनी जा, मेरी बात मान।

चन्द्रगुप्त—(भयभीत स्वर से) चलेंगे नहीं तो जायेंगे कहाँ?

रामगुप्त—(तिरस्कार से) मैं नहीं चलूँ तो तू क्या करेगा? कह डाल।

चन्द्रगुप्त—क्या करूँगा? (रामगुप्त का हाथ पकड़ता है) भाई, याद रखना, तुम एकमात्र अपने स्वामी नहीं—हमारे, आर्यावर्त के, समस्त पृथ्वी के स्वामी हो; दस अक्षौहिणी सेना के पति हो; श्रीगुप्तकुल की कीर्ति द्वारा और कीर्ति के लिये जीते हो। तुम्हारी हिम्मत नहीं (दाँत पीस कर) कि हमसे द्रोह करो, हमारी कीर्ति को कलंकित होने दो।

रामगुप्त—(ओठ दबा कर) मैं नहीं चलूँगा।

चन्द्रगुप्त—(आँखों में से अंगार झरते हैं) तो मैं उठा कर ले जाऊँगा। मैं व्यर्थ नहीं आया। मैं और दंडनायक आपको उठा ले जायेंगे, अंतःपुर में बंद रखेंगे। क्या हम संसार से यह कहलावेंगे कि पराक्रमदेव का पुत्र युद्ध करने से इन्कार करता है?

रामगुप्त—मैं नहीं चलूँगा।

ध्रुवदेवी—(आगे आकर दृढ़ता से और शांति से) तो महाराज, मैं चलूँगी। (सब स्तब्ध होकर देखते हैं) गुप्तवंश की महादेवी—मैं आवश्यकता होगी, तो शकों के सामने जाऊँगी। महाराज, मैं तैयार हूँ। भगवती! (दत्तदेवी को हाथ जोड़ती है)

चन्द्रगुप्त—(हर्ष से) स्वामिनी! (जवाब में ध्रुवदेवी पहली बार खेद रहित हो हँसती है)

दत्तदेवी—(ध्रुवदेवी को छाती से लगा कर) बेटा, वधू! विजयिनी हो। अपने कुल की कीर्ति अमर करें ऐसे पुत्रों की माता हो।

चन्द्रगुप्त—(विजयोत्साह से रामगुप्त को) और स्वामी! मैं तुम्हें कल पिंजरे में बंद कर ले जाऊँगा।

रामगुप्त—सब ने षड्यंत्र रचा है। (निर्लज्जता से हँस कर कालिदास से) कालिये! तुझे कुछ कहना बाक़ी है?

कालिदास—(हाथ जोड़ कर) मुझे क्या कहना है स्वामी? जैसे अग्नि-ज्वाला आकाश की ओर ही बढ़ती रहती है उसी प्रकार सब गुप्त पराक्रम की ओर ही मुड़ते हैं।

रामगुप्त—चुप! मालिका चल; मधुरिका चल।

[रामगुप्त, मालिका और मधुरिका चले जाते हैं।]

वत्तदेवी—बेटा, गरुड़ध्वज की जो इच्छा होगी, वही होगा। (चन्द्रगुप्त से) वत्स, तुझे देख कर मेरी आँखें ठंडी हुईं। और ध्रुवदेवी तेरी बात सुन कर मेरा हृदय संतुष्ट हुआ। दोनों कुलों का तू उद्धार करेगी, यह मुझे पूरा-पूरा विश्वास हो गया। अच्छा, मैं जाती हूँ। (ध्रुवदेवी और चन्द्रगुप्त की ओर देखती है)

चन्द्रगुप्त—हाँ अंबा! (ध्रुवदेवी से) मैं उनको तैयार करता हूँ, तुम तैयार हो जाओ।

ध्रुवदेवी—(स्वस्थता से गर्दन झुका कर) हाँ।

[वत्तदेवी और चन्द्रगुप्त जाते हैं। जाते-जाते चन्द्रगुप्त पीछे मुड़कर देखता है। ध्रुवदेवी ज़रा अस्पष्ट रीति से मुड़ती है। उसके जाने के उपरांत ध्रुवदेवी पल भर के लिये आँखें बंद करती है और ओठ पीस कर ऊपर देखती, फिर अपने परिधान सँवार कर चल देती है। कालिदास अकेला खड़ा-खड़ा हँसता है।]

[पटाक्षेप]

अंक दूसरा

[समय—लगभग ढाई महीने उपरांत, मध्याह्न के बाद लगभग दोपहर।

स्थल—उज्जयिनी का प्रासाद। पाषाण के स्तंभों की पंक्तियाँ ही पंक्तियाँ तीनों ओर दिखाई देती हैं और पीछे उद्यान दृष्टिगत होता है। मध्य में एक विशाल सभागृह है, दाहनी ओर बिल्कुल आगे श्वेत संगमर्मर का कटहरा वाला जीना आता है। मध्य में थोड़ी सी सुवर्ण जड़ित कुर्सियाँ पड़ी हैं। एक पर महादंडनायक उन्दान बैठा है। उन्दान पैंसठ-सत्तर वर्ष का एक शक्तिशाली योद्धा है। सिर पर बँधे हुए दुपट्टे में से उसके सफ़ेद बाल चमकते हैं। उसके हाथ पर पट्टी बँधी है। उसका एक हाथ पड़ी हुई तलवार पर है। उसकी आँखें देखने में लाल टूल हैं; वह थोड़ी-थोड़ी देर में कपाल पर से पसीना पोंछता है।

जीने के कटघरे को पकड़ कर महाश्वपति रोहल सामने खड़ा है। उसके हाथ पर भी रक्तमय पट्टी है। उसके मुख पर जागरण, भूख, चिंता और खिन्नता दृष्टिगोचर होती है। वह नीचे सिर झुकाये खड़ा है।

कोई बोलता नहीं।

दूर से घोषणा सुनाई देती है, "महाक्षत्रप की जय!"

रोहल खेद से उन्दान की तरफ़ देखता है और निःश्वासें छोड़ता है। उन्दान जैसे नींद में से जागा हो इस प्रकार चारों ओर देखता है, और उसके मुख पर वेदना की छाप है।]

उन्दान—(रो कर, फटी हुई आवाज़ से और घुटनों पर हाथ ठोंक कर) इस कठोर वृद्धावस्था में मुझे यह देखना पड़ा। अभी कल तो मैं पृथ्वी का विजेता था और आज क्षत्रप का ग़ुलाम! (जैसे संड़ासी में

साँप तड़पता है, उसी प्रकार अकुला कर जानवर की तरह चारों ओर देखता है।) क्या करूँ ? हम मर गये—मर गये.....ओ स्वामी ![1]

रोहल—(सम्मान-पूर्वक, निराशामय स्वर में) महादंडनायक, यह देखने के लिये हम क्यों जीवित रहे ?

[नीचे सिर झुकाकर उदास खड़ा रहता है।]

उन्दान—(आकुल हो कर) अपनी उज्जयिनी में दुर्ग तोड़ कर शकपति घुस जाय ! हमको उसकी शरण में जाना पड़े। हाय ! हाय ! यह विष का घूँट पराक्रमदेव के महादंडनायक के भाग्य में !

[खड़ा हो कर कमर पर हाथ रख इधर-उधर फिरता है।]

रोहल—(थोड़ी देर रुक कर) दंडनायक, हमारी समूची सेना कबूतरों की तरह उड़ गई !

उन्दान—(आँखें फाड़ कर) रोहल, रोहल, ऐसी हार मैंने कभी खायी नहीं, देखी नहीं, अरे, सोची भी नहीं। (माथे पर हाथ रखता है) सारी आपत्ति देव के कारण आई (दाँत पीस कर) भगवन्—कार्तिकेय ! कैसे पिता और कैसा पुत्र ! पहले आक्रमण करने न दिया; और फिर असमय में युद्ध के लिये तैयार हुआ और अंतिम संघर्ष के समय भाग खड़ा हुआ। इतनी उम्र में मेरी अक़्ल कहाँ मारी गई थी, जो इसे यहाँ बुलाया ?

रोहल—(सिर हिलाता है) मेरे समस्त योद्धा मारे गये..... बेचारे !

उन्दान—(दुःख से) रोहल, ये सब भाग्यशाली निकले। इन आँखों से दुःख देखने के लिये हम रह गये; पराक्रमदेव की कीर्ति का अस्त देखने के लिये हम बच गये !

[माथे पर हाथ रख कर थोड़ी देर इधर-उधर फिरता है।]

रोहल—(थोड़ी देर में) अभी तक हरिसेन क्यों नहीं आये ?

---

[1] कार्तिकेय स्वामी—समरांगण के अधिष्ठाता देव।

उन्दान—(रो कर) मुझे शकपति की शर्तें स्वीकृत करनी पड़ीं .....(दाँत पीस कर) इतने हाथ पैर पीटे, पर मैं मरा नहीं। (घोड़े की टाप सुनाई देती हैं) मालूम होता है हरिसेन आ रहा है। वह आ कर क्या करेगा? पराधीनता की शृंखला की झंकार सुनायेगा? (रोहल के पास जाकर उसके कन्धे पर हाथ रख कर) रोहल, बेटा, शकपति मुझे पकड़े, इससे पहले मेरा शिरच्छेद कर दे। बेटा, शैशव से विजय के अतिरिक्त और कुछ नहीं देखा और दूसरा कुछ देखने के लिये मुझे जीना भी नहीं। रोहल, मेरी इतनी आज्ञा मान। मेरा खड्ग ले, यह हरिसेन आ रहा है।

रोहल—(निराशा से हाथ जोड़ कर) महादंडनायक, गुरुवर! मैं आपका शिरच्छेद करूँ? मुझसे यह कैसे हो सकता है?

उन्दान—(हाथ जोड़ कर) पुत्र से भी प्रिय रोहल! यह सच है कि पुत्र पिंडदान से स्वर्ग भेजता है, पर आज तू मुझे अपने हाथ से स्वर्ग पहुँचा!

[रोहल के सामने तलवार रख देता है, पर वह उठाता नहीं। इतने में हरिसेन आता है। यह ध्रुवभूति का पुत्र, दंडनायक और संधिविग्रहक कवि है, और पंद्रह सौ वर्ष के उपरांत गुप्तकुल के उद्धार का यश इसके भाग्य में लिखा है। इलाहाबाद में प्राप्त—इसकी रची हुई समुद्रगुप्त की प्रशस्ति से ही इसके स्वामी की दिग्विजय भविष्य की प्रजा जानेगी, यह बात यहाँ खड़े हुए किसी को तो ख़बर कहाँ से हो सकती थी?

उसने बख़्तर तो अवश्य पहन रक्खा है, पर उसके हाथ में कोई शस्त्र नहीं। उसका मुख गंभीर और म्लान है। और उन्दान तथा रोहल के मुख से तेजस्वी है। उसकी आँख में और उसके मुख पर, आवाज़ में और चाल में, संस्कारिता दिखाई देती है। वह सशक्त है। उसकी आयु लगभग चालीस वर्ष की होगी।]

हरिसेन—महादंडनायक, यह क्या करते हो? शकपति आ रहा है?

[उन्दान पीछे हट कर विस्मय से देखता है ।]

उन्दान—यहाँ ? किस लिये ? हमें पकड़ने के लिये ? मार डालने के लिये ?

हरिसेन—नहीं, यह हमें पकड़ना नहीं चाहता । सेना, धन और धरती ये तीन वस्तुएँ लेने के लिये वह स्वयं देव के पास आ रहा है ।

उन्दान—(ज़ोर से हाथ हिला कर) सेना, धन और धरती को हस्तगत करने वाला मैं उन वस्तुओं को आज शकपति को सौंप दूँ ? (निराशा से गर्दन हिला कर) क्या होने वाला है भगवन् !

हरिसेन—(आश्वासन देकर) महादंडनायक, सावधान होइये । विपत्ति काल में यदि आप जैसे व्यग्र होंगे तो फिर हम कहाँ जायँगे ! यह झटका संभाल लें ।

उन्दान—क्या तकदीर सँभालूँ ? आज तक पचास वर्ष से आगे बढ़ाया हुआ पैर मैंने पीछे नहीं खीचा । अरे, जी में यही आता है कि अपना सिर फोड़ डालूँ ।

[बाहर घोड़े की टापों का स्वर सुनाई देता है ।]

हरिसेन—दंडनायक, स्वस्थ हों । महाक्षत्रप आ पहुँचा । दुश्मन को वीरों का आक्रंद सुनने देंगे ?

उन्दान—रोहल, देव से कहो कि यहाँ आने की कृपा करें ।

रामगुप्त—(जीने पर आकर) हरिसेन, मैं यह आ गया । तेरी ही प्रतीक्षा में बैठा हूँ ।

[रामगुप्त इस समय भी नशे में लगता है, हमेशा की तरह दो यवन सुंदरियाँ पीछे-पीछे उसकी सामग्री लेकर आ रही हैं । वह जीने से उतर कर एक आसन पर बैठता है और पैर पर पैर रखता है और सब की ओर तिरस्कार से देखता है । इस समय रोहल शिष्टाचार को भूल कर नीचे देख रहा है ।

उन्दान रामगुप्त की ओर दाँत पीस कर तथा आँखें निकाल कर

उग्रता से देखता है। एकमात्र हरिसेन अस्पष्ट तिरस्कार से, लेकिन सम्मान से हाथ जोड़े खड़ा है।]

हरिसेन—देव की विजय हो!

रामगुप्त—(कृत्रिम हँसी हँसकर) क्यों शकपति मार रहा है, या छोड़ रहा है?

हरिसेन—(खेद से) कृपानाथ, छोड़ देगा, पर—पर—नाक काटकर।

रामगुप्त—(ज़ोर से हँस कर) जीवित रह गये तो बिना नाक के ही रह लेंगे। पर वह चन्द्र कहाँ टक्कर मार रहा है? उसे सारी दुनिया के साथ लड़ने का बड़ा चसका है। उससे कहो कि साथ लेता जाय। (निर्लज्जता से हँसता है। सब मूक तिरस्कार से देखते रहते है) और मधुरिका, अपनी महादेवी को बुलाओ। ऐसे समय में वह रह न जाय।

हरिसेन—(हाथ जोड़कर) क्षमा करें देव, इस समय महादेवी का क्या काम है? यह प्रसंग सुकुमार सुंदरियों के लिये नहीं।

रामगुप्त—(हँस कर, कटुता से) भले मानस भला महादेवी कहीं सुकुमार सुन्दरी है? कुमारदेवी और दत्तदेवी संधिविग्रह किया करती थीं, तो ध्रुवदेवी क्यों नहीं? जा, मधुरिका जा, उसको बुला ला।

[मधुरिका जाती है। सब मौन बैठ जाते हैं। उन्दान उग्रता को मार्ग देने के लिये चुपचाप ओठ फड़फड़ा कर बड़बड़ाता हुआ दिखाई देता है। बाहर शंखध्वनि होती है।]

हरिसेन—रोहल, मेरे साथ चल। शकपति को अंदर बुला लायें।

[दोनों जाते हैं। थोड़ी देर तक कोई बोलता नहीं]

रामगुप्त—उन्दान, अभी तेरा रोष उतरा नहीं। मैंने तुझसे पहले ही कहा था कि मेरा हृदय करुणा का सागर है। (हँसकर) तलवार की चमक और रुधिर की धार देखता हूँ तो मेरा हृदय प्रासाद की शांति या उद्यान की लहर की कल्पना करता है।

[उसने उन्दान का उपहास किया हो इस प्रकार खिलखिला कर

हँसता है, गुस्सा शांत न रख सकने के कारण महादंडनायक ज़ोर से सिर को झटका देकर खड़ा हो जाता है और देव का अस्तित्व भुला कर, नीचे देख कर, इधर-उधर फिरने लगता है।]

उन्दान—(बड़बड़ाते हुए) सब का सत्यानाश कर डाला!

हरिसेन—(बाहर से) महाक्षत्रप, इस ओर, इस ओर।

[कोई बोलता नहीं। थोड़ी देर में शस्त्र और बख़्तर पहने हुए लगभग पचास योद्धाओं को हरिसेन और रोहल अंदर ले आते हैं। महाक्षत्रप, रुद्रसेन, हरिसेन और रोहल के पीछे झपाटे से हाथ हिलाता हुआ आता है।

अनेक शताब्दियाँ हुईं आनर्त और मालवा पर महाक्षत्रप राज्य करते थे। उससे पहले वे उज्जयिनी में या जूनागढ़ में राज्य करते थे। महाक्षत्रप रुद्रदामन का लेख गिरनार चढ़ते समय पत्थर पर खुदा हुआ मिलता है। इन परदेशी राजाओं ने शिवमार्ग स्वीकार किया। धीरे-धीरे गुप्तों का प्रभाव बढ़ता गया वैसे ही उनका साम्राज्य घटता गया। पराक्रमदेव ने उनसे मालवा जीत कर उज्जयिनी में अपनी सत्ता स्थापित की थी; पर महाक्षत्रप रुद्रसेन ने इस समय उसे तोड़ डाला। रुद्रसेन गोरा, मज़बूत स्नायुओं वाला, और जरा छोटे क़द का है। उसकी दाढ़ी, विशाल नेत्र, छोटी सी बैठी हुई मोटी नाक उसके मुख को भयंकर बना रही है। उसके बाल कन्धे पर लटके हुए हैं। उसने सुनहरा बख़्तर और खड्ग धारण कर रक्खा है और हाथ में एक परशु है। वह मगध के महाभागवत का विजेता है यह गर्व उसकी आँखों में, शब्दों में और चाल में दिखाई देता है। वह लंबे डग रख कर भवन में आता है और पहले नीचा सिर कर खड़े हुए उन्दान की ओर और फिर बैठे हुए रामगुप्त की तरफ़ देखता है। उसके पीछे पच्चीस-तीस योद्धा उस जैसे ही शस्त्रों से सुसज्जित आकर खड़े हो जाते हैं और कोई अद्भुत वस्तु देखते हों इस प्रकार चारों ओर आनन्द से देखने लगते हैं।]

हरिसेन—(रामगुप्त के पास जा प्रणाम कर) स्वामी की जय हो ! महाराजाधिराज, महाक्षत्रप रुद्रसेन पधारे हैं।

[रुद्रसेन यह शिष्टाचार देख कर खिलखिला कर हँसता है और कूद कर पहले उन्दान के सामने और फिर रामगुप्त के सामने, जैसे वे अनदेखे प्राणी हों इस प्रकार खड़ा रह कर देखता है।]

रुद्रसेन—हाँ मैं पधारा। (कूद कर उन्दान के सामने) यह तो उन्दान। हा—हा—हा पहचाना ! बहुत बार हमें परेशान किया है। दो बार मेरे बाप को पकड़ा और दो बार मुझे। क्यों बूढ़े ! पहचाना ?

[उन्दान चुपचाप और स्थिर नयनों से देखता रहता है। रुद्रसेन वहाँ से कूद कर रामगुप्त के सामने देखता है।]

और यह समुद्रगुप्त का पुत्र रामगुप्त !

[सिर उठाकर ज़ोर से हँसता है]

रामगुप्त—(हरिसेन से) हरिसेन, इससे कहो कि बात करनी हो तो मनुष्य की समझ में आ जाय इस प्रकार बोले।

रुद्रसेन—(हँसना बंद कर कमर पर हाथ रख रामगुप्त को घबराने का प्रयत्न करता है) मेरे शब्द नही समझता ? समझेगा, समझेगा, खड़ा रह। (दाढ़ी पर हाथ फेर कर) जिसने मेरे पिता को मारा, जिसने मेरा मालव देश लिया उसका पुत्र—क्यों ?

रामगुप्त—(हरिसेन की तरफ़ घूम कर) पराक्रमदेव की बात करता हो, तो ठीक है।

रुद्रसेन—(गर्दन हिला कर) समुद्रगुप्त का पुत्र—

रामगुप्त—(शांत तिरस्कार से) उसे ही हम पराक्रमदेव कहते हैं।

रुद्रसेन—(हाथ मलते हुए) हाँ, हाँ ! आखिर मेरा बैर निकला। (अपने सेनापति से) जयदमन, आखिर मैंने उज्जयिनी तोड़ी। समुद्र-

गुप्त ने मेरे बाप को क़ैद किया। मैंने उसके बेटे को क़ैद किया। (फिर खिलखिला कर हँसता है)

रामगुप्त—हरिसेन, यह समझे ऐसी भाषा में इससे कह दे कि इस तरह घूमता रहेगा तो पैर दुखने लगेंगे।

रुद्रसेन—(रामगुप्त की तरफ़ आँखें निकाल कर पहले अपने पैरों की ओर फिर रामगुप्त की ओर देखता है) मैं घूमता रहूँगा, जो जी में आयेगा सो करूँगा। मालवदेश मेरा है, उज्जयिनी मेरी है; अब मुझे जो अच्छा लगेगा, करूँगा। हा—हा—हा! रामगुप्त! तू अब मेरी मुट्ठी में आया है। कह तो मसल डालूँ?

[चुटकी बजाता है]

रामगुप्त—(शांति से) आज मैं तुझे किसी भी बात के लिये मना नहीं करूँगा।

रुद्रसेन—तीस साल तक मेरे और मेरे बाप के प्राण संकट में डाले; पर अब तू मेरे हाथ में आया है!

रामगुप्त—हरिसेन, इसे कुछ तो समझा। सौ बार कहेगा तो भी मैं हाथ में आ गया हूँ और एक बार कहेगा तो भी। पर अब कोई रास्ता भी निकालेगा या यों ही बात करता रहेगा?

रुद्रसे—(छलांग मार कर उन्दान के सामने आता है) उन्दान, पहले एक बार मुझे पकड़ा था याद है?

[उन्दान गर्व से देखता है। हरिसेन आगे आकर हाथ जोड़ता है।]

हरिसेन—महाक्षत्रप, महाराज, महाराजाधिराज पूछते हैं कि आप संधि किस तरह करना चाहते हैं?

रुद्रसेन—आसान बात है। तुमने हमको मारा नहीं था हम भी तुम्हें मारेंगे नहीं। पर मुझे यह बुड्ढा अच्छा नहीं लगता। (उन्दान की ओर अँगुली उठाता है) कल ही इसके प्राण तड़पने लगें, इसलिये मैं जो माँगता हूँ वह दो।

हरिसेन—(अत्यंत मीठे स्वर से) परन्तु महाक्षत्रप, आपको क्या चाहिये ? महाक्षत्रप, इतना याद रखना कि औदार्य ही विजय का भूषण है। सौराष्ट्र के महाक्षत्रपों ने सदा से यह सिद्धान्त माना है।

रुद्रसेन—(हँसकर) महाक्षत्रपों ने क्या माना है यह मैं जानता हूँ और मुझे क्या चाहिये यह भी मैं जानता हूँ। हरिसेन, तू तो कवि है। एक बार काव्य लिख कर गिरिनगर ले आना; महाक्षत्रपों के उदार हृदय का परिचय मिल जायगा।

हरिसेन—(मीठी हँसी हँस कर) महाक्षत्रप ! आपको क्या चाहिये यह तो बताइए !

[रुद्रसेन कूद कर हरिसेन के सामने कमर पर हाथ रख खड़ा हो जाता है।]

रुद्रसेन—बताऊँ ? आनर्त और मालवा खाली कर दो।

रामगुप्त—(स्वगत) छुटकारा कहाँ है ?

हरिसेन—फिर ?

रुद्रसेन—उज्जयिनी लौटा दो। मैं विध्वंस करूँ।

हरिसेन—अररर ! यह तो बहुत कह दिया।

रुद्रसेन—(उग्रता से) मैं यहाँ भाव करने आया हूँ ? एक हज़ार रथ, एक हज़ार हाथी—

हरिसेन—अरे—अरे—

रुद्रसेन—अरे अरे ? अभी घबराता है क्यों ? पाँच हज़ार घोड़े और दस हज़ार स्वर्ण दीनार।

रामगुप्त—(तिरस्कार से स्वगत) माँग, माँग, इस समय तू नहीं माँगे तो और कौन माँगेगा।

हरिसेन— परन्तु महाक्षत्रप, यह सब कैसे हो सकता है ? हम लायें कहाँ से ? मेरी एक बात सुनिये।

रुद्रसेन—(रुक कर अधीरता से) सुन रहा हूँ। क्या कहना है ?

जल्दी कह डाल (भयंकर आवाज़ में) मेरी इच्छित वस्तुएँ यदि नहीं दोगे तो कल ही उज्जयिनी को विध्वंस कर दिया जायगा और उसके प्राणियों का वध।

हरिसेन—महाक्षत्रप, विजेताओं के परम धर्म को अपनाये रहो। ऐसी संधि करो जो सदा ही स्वीकार्य हो। हम बहुत लड़े, बहुत थके। अब कुछ ऐसे करो कि पाटलिपुत्र और गिरनार के बीच स्नेह-संबंध बँध जाय।

रुद्रसेन—(हँसकर) अपनी कुमारी का विवाह करना है?

कंचुकी—(बाहर से) भट्टिणी, इधर पधारें, स्वामिनी इधर!

[ध्रुवदेवी उदास पर तेजस्वी और मोहक, ज़ीने पर से उतर कर आधे ज़ीने पर आती है। गौरव भरे खेद से वह स्फटिक मूर्ति सदृश लगती है फिर भी उसकी आँखों में और मुख पर उत्साह दिखाई देता है। वह स्वस्थता से रामगुप्त और रुद्रसेन की तरफ़ देखती है। रुद्रसेन तथा दूसरे शक आँखें फाड़ कर यह सौंदर्य और तेजस्विता देखते रहते हैं। रुद्रसेन एकटक देखता रहता है और खुला हुआ मुँह बंद करना भूल जाता है]

ध्रुवदेवी—हरिसेन, क्या बात है?

हरिसेन—स्वामिनी, किस शर्त पर संधि होगी यह महाक्षत्रप बता रहे हैं।

रुद्रसेन—(ज़रा अस्वस्थ रीति से और अपनी कर्कश आवाज़ को यथाशक्ति मृदुल बनाने का प्रयत्न करते हुए) हाँ, महाक्षत्रप रुद्रसेन में ही।

[वह फिर ध्रुवदेवी की ओर एकटक देखता रहता है।]

हरिसेन—वीरश्रेष्ठ महाक्षत्रप, आपने बहुत माँग लिया, इतना अधिक हमसे दिया जा सके, ऐसा नहीं। ज़रा सोचो तो।

ध्रुवदेवी—हरिसेन, महाराज चन्द्रगुप्त कहाँ हैं।

[ध्रुवदेवी की आवाज़ सुनकर रुद्रसेन उसकी ओर देखता है।]

हरिसेन—भट्टिणी, अभी आते होंगे। महाक्षत्रप, ज़रा विचार तो करो।

रुद्रसेन—(शब्द-भ्रम का अनुभव करते हुए) मैंने माँग लिया सो माँग लिया—उज्जयिनी खाली करो, आनर्त का विध्वंस करो।

हरिसेन—(हाथ जोड़ कर) महादंडनायक! महाक्षत्रप को आप ही कुछ समझाइये न!

रामगुप्त—(तिरस्कार से) इसमें उन्दान क्या कहेगा? रुद्रसेन, लो मैं ही कहता हूँ छोटी सी बात। हमें जीवित छोड़ दे और बीस वर्ष तक हमसे कुछ न कह—बस इतना हम चाहते हैं। बोल क्या लेगा? मुझे तो जल्दी से जल्दी कुसुमपुर जा कर विश्राम करना है।

रुद्रसेन—(ध्रुवदेवी की ओर धृष्टता से देखते हुए) तुझे शांति से बैठना है, बस इतना ही है न!

रामगुप्त—(कष्ट-पूर्वक) अरे हाँ भाई, कह डाल न?

हरिसेन—(बीच में बोल कर) देव, मुझ पर कृपा करें और बात करने दें। इसमें आपकी आवश्यकता नहीं।

रुद्रसेन—(जीभ पर होठ फेर कर चमकती आँखों से) रामगुप्त, तुझे शांति से ही बैठना है न? जा तुझे अपने जीवन भर सुख से रक्खूंगा। अपनी उज्जयिनी तू ही रख। मालवा भी चाहिये तो रख।

[सब चकित हो जाते हैं]

हरिसेन—(विस्मय से) हैं!

जयदामन—(चौंक कर) महाक्षत्रप, यह क्या?

रुद्रसेन—हाँ, मुझे एक भी घोड़ा नहीं चाहिए। एक भी दीनार नहीं चाहिये।

रामगुप्त—(ज़रा आनन्द से सीधा बैठते हुए) तब क्या चाहिये, वह बतला न?

रुद्रसेन—आज रात को ही मैं सौराष्ट्र की ओर प्रयाण कर जाऊँगा, तुमको उज्जयिनी सौंप दूँगा, पर मुझे—

हरिसेन—(अधीरता से) क्या ?

रुद्रसेन—(हाथ लंबा कर) यह—यह सुंदरी सौंप दो।

हरिसेन—(ओठ काट कर) } क्या कहा ?
उन्दान—(आगे आकर) }

[ध्रुवदेवी क्रोध में सीधी होकर स्थिर नयनों से अंगार बरसाती हुई खड़ी हो जाती है]

रुद्रसेन—(हँस कर) घबराओ मत। जयदामन ! पहले इस उन्दान की तलवार छीन लो और इनमें से प्रत्येक के पास दो-दो, तीन-तीन शक योद्धा खड़े हो जाओ।

[शक आज्ञानुसार खड़े हो जाते हैं और जयदामन उन्दान के पास जाता है।]

उन्दान—(आँखें निकाल कर गर्जना करता है) यह कौन सौराष्ट्र का शिवभक्त बोल रहा है ? बोलते समय तुम्हारी जीभ में आग नहीं लगी ? (उसे दो शक पकड़ने जाते हैं पर उनको दूर ढकेल देता है) हम अभी जीवित हैं मरे नहीं।

रामगुप्त—(सीधा बैठ कर) उन्दान, ज़रा शांति रख ! हम जीवित हैं और रहना है इसी की तो सारी समस्या है। तलवार दे दे, चल तो। सब शांति से बैठ कर विचार करें।

[मगध के सब लोग उसकी ओर क्रोध से देखते रहते हैं।]

रुद्रसेन—मैं नहीं बैठूँ ?

रामगुप्त—जैसी मर्ज़ी ! उन्दान मेरी आज्ञा है तलवार दे दे।

[उन्दान तलवार फेंक देता है। बाहर किसी की आवाज़ सुनाई देती है और द्वार के आगे खड़े हुए शकों के बीच से होकर चन्द्रगुप्त अंदर आता है। अंदर आते ही उसे तीन-चार शक घेर लेते हैं]

जयदामन—(आगे आ कर) महाराज अपने शस्त्र दे दो।

चन्द्रगुप्त—(समझ में न आने से सब की ओर विस्मय से देखता है) मेरे शस्त्र ? किस लिये ?

रामगुप्त—चन्द्र, अपने शस्त्र सौंप दे। हम सौराष्ट्रपति के साथ संधि कर रहे हैं।

[चन्द्र गुस्से से शस्त्र फेंक देता है। रुद्रसेन उसके सामने खड़ा हो कर उसको नख-शिख तक देखता है।]

रुद्रसेन—यह कौन चन्द्रगुप्त ? अरे, तेरी मूँछें तो तेरे बाप जैसी हैं।

[चन्द्रगुप्त मूक तिरस्कार से देखता है।]

रुद्रसेन—(रामगुप्त और हरिसेन की तरफ़ मुड़ता है।) बोलो, मेरी माँग स्वीकार है या नहीं ? क्या जवाब देते हो ?

हरिसेन—महाक्षत्रप, यह घोर अधर्म है ! हार और जीत यह तो नरपतियों के ललाट पर लिखी है, पर यह घोर—

रुद्रसेन—हरिसेन, मैं यहाँ धर्मसूत्र सुनने नहीं आया हूँ। महादेवी को भेज दो, फिर खा-पी कर मौज करो।

[चन्द्रगुप्त दूर खड़ी हुई ध्रुवदेवी की तरफ एक दृष्टि डालता है, ध्रुवदेवी के मुख पर छायी हुई उग्रता को देखता है।]

चन्द्रगुप्त—(प्रचंड आवाज़ में) क्या कहा रुद्रसेन ? महादेवी को कहाँ भेज दें ?

[महादेवी व्यग्रता से नीचे देखती है।]

रुद्रसेन—हाँ, महादेवी को मुझे दे दो, मैं तुम्हें समस्त मालवा सौंप कर रात को ही यहाँ से चला जाऊँगा।

चन्द्रगुप्त—(घुस कर पास आने का प्रयास करता है पर शक उसे पकड़े रखते हैं) दुष्ट गुप्तवंश की महादेवी चाहता है !

रुद्रसेन—(तलवार पर हाथ रख कर) हाँ, चाहता हूँ और भेजनी पड़ेगी।

चन्द्रगुप्त—(ध्रुवदेवी से) महादेवी, तुम यहाँ किस लिये खड़ी हो ? अंतःपुर में जाओ। महादेवियों के गौरव अभेद्य रखने वाले हम बैठे हैं, जाओ !

ध्रुवदेवी—महाराज, आकुल मत होइये, मैं घबराती नहीं।

चन्द्रगुप्त—(अपने पकड़ने वाले को हिलाकर) क्षत्रप, मदांध, विजयांध, तुझे हमारी महादेवी चाहिये ? पराक्रमदेव की परम धवल कीर्ति कलंकित करना चाहता है ? तू क्या यह समझता है फिर हम जीतना जानते थे और हारना नहीं जानते ? जीना आता था और क्या मरना नहीं आता ? हरिसेन, संधि-विग्रहक, इस दुष्ट से कह दो कि यहाँ से बाहर निकल जाय और जो हो सके कर ले।

रुद्रसेन—(ज़ोर से हँस कर) अरे कम बोल, ज़रा कम बोल ! मैं क्यों निकलूँ ? इससे पहले तुम सब का काम तमाम कर ध्रुवदेवी को उठा न ले जाऊँ ?

चन्द्रगुप्त—(ध्रुवदेवी की तरफ़ देखता है, ध्रुवदेवी जवाब में गौरव से हँसती है) रुद्रसेन, यह शकबाला नहीं, आर्यों की मुकुटमणि है। तेरी हिम्मत हो तो उठा ले जा। हम परलोक जायेंगे वहाँ भी यह हमारी राज्यलक्ष्मी हमारे साथ जायेगी।

रामगुप्त—(हाथ उठा कर) रुद्रसेन, चन्द्रगुप्त तुम दोनों छोटे बच्चों जैसी बातें कर रहे हो। चन्द्र, सुन, तू बिल्कुल मूर्ख है। मूर्खता की बातें नहीं करते। मालवा बच रहा है, सेना बच रही है और हम शांति से पाटलिपुत्र वापिस भी चले जाने वाले हैं।

चन्द्रगुप्त—(रामगुप्त की ओर घूर कर) क्या तुम भी—

रामगुप्त—(शकों से) ज़रा इसे मज़बूत पकड़ रखना; यह ज़बरदस्त है। चन्द्र, महादेवी यहाँ रहे तो क्या और सौराष्ट्र में रहे तो क्या ?

[चन्द्रगुप्त दाँत पीसता है। मागधी वीर जीभ काटते हैं। शक योद्धा खिलखिलाकर हँसते हैं।]

ध्रुवदेवी—(पीछे हट कर, दीवार पर हाथ रख कर गर्व से) महाराज पांडुपुत्र ने पत्नी दे दी थी वह तो वचनबद्ध हो कर। पराक्रमदेव का कुलभूषण पत्नी को स्वेच्छा से दूसरे के हाथ में सौंप रहा है।

रुद्रसेन—(स्वगत) यह है स्त्री! इसके समक्ष सारे संसार का राज्य भी तुच्छ है!

चन्द्रगुप्त—(रामगुप्त की ओर घूर कर) चांडाल, ऐसे शब्द बोलते हुए तेरी जीभ नहीं कट जाती? (उन्दान, रोहल और हरिसेन की तरफ़ देख कर) मित्रो, वीरो, यह क्या देख रहे हो?

उन्दान—(नीचे सिर झुका कर) क्या करूँ?

हरिसेन—(आँखें बंद कर) शांतम् पापम्।

रुद्रसेन—(हँस कर) हाँ, मैं किसकी बात मानूँ? स्वामी की या दासों की?

उन्दान—महाक्षत्रप, हमने धर्मयुद्ध किये हैं, पापयुद्ध नहीं। तुमने मर्यादा नहीं भुलाई, मैंने भी मर्यादा नहीं भुलाई; और इतने वर्षों में यह?

रुद्रसेन—उन्दान, इसमें पाप क्या है? तेरे देव को तो यह सुंदरी प्रिय नहीं। मुझे वह प्रिय है। फिर क्या? इसमें तो सभी का सुख है।

चन्द्रगुप्त—(घुड़क कर) चुप लंपट!

जयदामन—(धीरे से हाथ जोड़ कर) महाक्षत्रप, यह क्या कर रहे हैं, और कह रहे हैं?

रुद्रसेन—(निर्लज्जता से) तुझसे मैंने नहीं पूछा है।

हरिसेन—यह बात छोड़ दो और दूसरा कुछ माँगो।

रुद्रसेन—(दृढ़ता से) और क्या? कुछ नहीं। एक पहर में या तो ध्रुवदेवी मेरे शिविर में आ जाये नहीं तो तुम सब का शिरच्छेद होगा।

हरिसेन—तो महाक्षत्रप, मेरा सिर यह रहा।

उन्दान—(सिर झुका कर) मैं भी तैयार हूँ।

[चन्द्रगुप्त दोनों हाथों से अपने बाल खींचता है ।]

रामगुप्त—तुम सब भले ही तैयार हो पर मैं नहीं । मुझे जीवित रहना है । भले ध्रुवदेवी सौराष्ट्र को सुशोभित करे । रुद्रसेन, इसे ले जा और मौज कर ।

रुद्रसेन—(हँस कर) क्यों चन्द्रगुप्त समझा ? अब क्या सोच रहा है ?

चन्द्रगुप्त—(दाँत पीस कर) मैं विचार कर रहा हूँ कि विधि ने इस समय किस की मृत्युघड़ी निश्चित की है । (थोड़ी देर नीचे देख कर हँसता है और फिर ऊपर देखता है) शकपति याद रखना ! श्री-गुप्तकुल की महादेवी मात्र जगदंबा नहीं, त्रिभुवन-विनाशिनी चंडी भी है ।

रुद्रसेन—इसकी तू चिंता न कर ।

चन्द्रगुप्त—(निश्चय पर आकर) ठीक, तब शकपति, भोगेगा अपना किया ।

[रामगुप्त खिलखिला कर हँसता है ।]

ध्रुवदेवी—(दुःसह वेदना से और व्यंग से चन्द्रगुप्त की ओर देख कर निराशा भरी आवाज़ से) महाराज ! तुम भी.....(सिर नीचे झुका कर) इस समय मैं क्या सुदर्शन चक्रधारी को याद करूँ ?

चन्द्रगुप्त—(भक्तिपूर्ण और आर्द्र नयनों से ध्रुवदेवी की ओर देखते हुए और विजय भरे स्वर से) स्वामिनी, हाँ, मैं भी । रुद्रसेन को महाचण्डी का मोह लगा है । चलो, तैयार हो जाओ । हरिसेन तुम भी चलो; महादेवी को तैयार करें ।

रुद्रसेन—(हँस कर) यह बात है, अच्छा ! जयदामन उस ओर पहरेदार हैं ?

जयदामन—कृपानाथ !

रुद्रसेन—तब खुशी से सिधारें ।

रामगुप्त—(तिरस्कार से) चन्द्र, जा, जा, बात कर ले। यह सौराष्ट्र चली जायेगी, फिर तुझे अवसर नहीं मिलेगा।

[चन्द्रगुप्त-तिरस्कार पूर्वक जीना चढ़ कर अंदर चला जाता है और हरिसेन तथा महादेवी धीरे-धीरे पीछे जाते हैं।]

रुद्रसेन—(दाढ़ी पर हाथ फेरता है और अंदर जाती हुई ध्रुवदेवी की तरफ़ लालसा भरी आँखों से देखता है) स्त्री तो इसका नाम !

रामगुप्त—आँखों से देख—(हँसता है)

उन्दान—(खेद से पर दृढ़ता से) राजन्, हमारी महादेवी हमारे लिये लक्ष्मी से भी अधिक है। चाहिये तो प्राण ले लो पर ऐसे अवज्ञा के वचन न सुनाओ।

रामगुप्त—(मज़ाक़ में) ओरे, इतना अधीर क्यों हुआ जा रहा है ?

उन्दान—(गर्व से) तुम्हारी अधम वाणी सुन-सुन कर मैं थक गया हूँ। अब अधिक सुनने की शक्ति मुझमें नहीं। पचास वर्ष मैंने तुम्हारे पिता की सेवा की; इसलिये आज तुम्हारी भी करता हूँ; पर अब हद हो गई, बिलकुल हद हो गई। पराजय मे भी अधिक अधम और क्या हो सकता है इसकी मैंने आज तक कल्पना भी नहीं की थी, पर आज तो मैं आँखों के सामने देख रहा हूँ। आज के बाद यदि मैं जीवित रहा तो मुझे तुम्हारी नौकरी नहीं करनी।

रामगुप्त—बड़ी ख़ुशी की बात है। तेरे जैसे लड़ाकू हैं तभी तो यह सारा जंजाल है न ?

रुद्रसेन—(हँस कर) हा, हा ! जयदामन, सुना ? बूढ़े उन्दान, सुना ? तेरे मालिक को तो तेरी कुछ पर्वाह है नहीं। चल मेरे यहाँ चल। तेरे जैसे शूरवीर तो मेरे साथ अच्छे लगते है।

उन्दान—(गर्व से) मैं महाभागवत के सिवाय किसी की सेवा नहीं करता; और महाक्षत्रप, मुझे लगता है कि महाभागवतों का पुण्य समाप्त

हो गया। कल मैं वाराणसी जा कर भगवान् विष्णु की चरण-वंदना करूँगा और सदैव यही प्रार्थना करूँगा कि पराक्रमदेव की कीर्ति कलंकित होने से पहले ही मुझे उठा ले।

[हरिसेन वापिस लौट कर रुद्रसेन की तरफ़ जाता है। सब उसकी ओर आतुरता से देखते हैं।]

रुद्रसेन—क्यों हरिसेन? महादेवी तैयार हो रही है क्या?

हरिसेन—(मीठेपन से) महाक्षत्रप, आर्यावर्त की कीर्ति कलंकित हो ऐसी यह माँग छोड़ दें, ऐसी मगध की महादेवी की प्रार्थना है। जिसने अपने होश सँभालने के बाद आज तक किसी से कुछ नहीं माँगा वह तुम्हारी याचना करती है। राज्य आते हैं और चले जाते हैं, विजय मिलती है और चली जाती है; पर कीर्ति पर लगा हुआ धब्बा मिटता नहीं। महादेवी याचना करती हैं।

रुद्रसेन—तुम्हारे पराक्रमदेव ने क्या कसर रक्खी थी?

हरिसेन—उस महानुभाव ने धर्म का त्याग कर विजय प्राप्त नहीं की और विजय प्राप्त कर धर्म नहीं छोड़ा।

रामगुप्त—हरिसेन, इस तरह रोता क्यों है! पराक्रमदेव की कीर्ति इतनी उज्ज्वल है कि इतना बड़ा दाग़ तो उसके प्रकाश में दिखाई भी नहीं देगा।

[रुद्रसेन और शक खिलखिला कर हँसते हैं।]

उन्वान—(सत्ता से) आप चुप रहेंगे या नहीं!

रामगुप्त—क्यों? स्वामी मैं हूँ या तू? रुद्रसेन, जा उसे ले जा और आनन्द मना। पछताने पर मुझसे पूछने न आना।

[पान खाता है।]

हरिसेन—महाक्षत्रप, यह राजनीति की बात नहीं, धर्म की बात है। राजनीति तो चाहे जैसी हो लेकिन अस्थिर है, पर धर्म सनातन है। स्मृतियाँ ऐसे परस्त्री-संग्रह के अपराध में वध का दंड बताती हैं। गौ-

ब्राह्मण-प्रतिपाल रुद्रदामन के वंशज, आप इस प्रकार धर्म का त्याग कर देंगे ?

जयदामन—(रुद्रसेन से) कृपानाथ यह बात—

रुद्रसेन—(जयदामन से) चुप रह। (हरिसेन से) ठीक है, पर मेरे यहाँ ऐसी स्मृतियाँ नहीं। पराजित राजाओं की स्त्रियों से विवाह करना यह अधर्म कब से हो गया ? (कूद कर पास आता है) हरिसेन, कब तक माथापच्ची करनी है ? मैं और मेरे योद्धा थक गये हैं। ध्रुव-देवी को भिजवा दे, नहीं तो—

[चुटकी बजाता है।]

हरिसेन—महाक्षत्रप, तुम ज़िद्द नहीं छोड़ोगे ?

रुद्रसेन—मेरी आज्ञा माननी है या नहीं माननी ?

हरिसेन—(गौरव से) तो रुद्रसेन, जो किसी आर्य राजा ने नहीं किया भले ही तुम वह करो, भले ही तुम आर्यावर्त की धवल कीर्ति पर कालिख लगाओ। पर याद रखना, श्रीगुप्त के प्रतापी कुल की महादेवी इंद्राणी से भी अधिक पवित्र और अस्पर्श्य है। उसको स्पर्श करने का महापाप तुम्हारे और तुम्हारे शकों के विनाश को निमंत्रण देगा।

रुद्रसेन—(दाढ़ी पकड़ कर हँसता है) हरिसेन, तू मुझे डराना-धमकाना चाहता है ? भले मानस, महादेवी को भेज दे, यह तेरा देव कहता है, उसी के अनुसार तुम सब सुखी हो जाओगे। यहाँ तेरे रामगुप्त को इसकी पर्वाह नहीं। मेरे सौराष्ट्र में महाक्षत्रप की इस देवी की आज्ञा पालन करने वाले सहस्रों हैं।

रामगुप्त—यह चकचक कभी समाप्त होगी या नहीं ?

हरिसेन—(दृढ़ता से) रुद्रसेन, जाओ, तब अपनी मन चाही करो। एक पहर में महादेवी और उसकी दासियों को लेकर मैं तुम्हारे शिविर में आऊँगा। पर यहाँ से चले जाने का वचन तुम्हें तुरन्त पालन करना होगा।

उन्दान—(व्यथा अनुभव कर) हरिसेन !

हरिसेन—महादंडनायक, शांत हो रहें। क्या करना है, यह विधाता के आधीन है। (रुद्रसेन से) बोलो क्या कहते हो ?

रुद्रसेन—हाँ, मैं अपने वचन का पालन करूँगा। तू महादेवी को ले कर आ, मैं प्रतीक्षा में बैठा हूँ। वह आई कि हम यहाँ से चले।

हरिसेन—(हाथ जोड़ कर) सिधारें तब महाक्षत्रप ! यदि अपने किये का परिणाम भोगो तो हमें दोष मत देना।

रुद्रसेन—जयदामन, चलो; हरिसेन, भूलना मत। महादेवी जो न आईं तो सूर्यास्त से पहले तुम्हें मौत के घाट उतार दिया जायगा।

हरिसेन—(ओठ दबा कर) महाक्षत्रप, चिंता मत करो। प्रयाण करने की तुम भी तैयारी रखना। (रुद्रसेन और शक योद्धा चले जाते हैं। हरिसेन निःश्वासें छोड़ता है) रामगुप्त, गुप्तकुलकलंक, आज मेरे जीवन, मेरी राजनीति, मेरी विद्या, मेरे संस्कार, सब पर पानी फेर दिया। तुम्हारी आज्ञा सिर माथे रखने के लिये जो चाण्डाल भी न करे वह मैं कर रहा हूँ। मैं इस समय आज्ञा पालन कर रहा हूँ—अंतिम बार; फिर नहीं करूँगा।

रामगुप्त—हरिसेन, आज से मुझे किसी से काम ही क्या है ? मैं आज ही कुसुमपुर चला।

[खड़े हो कर जाने लगता है]

हरिसेन—(कटुता से) हाँ, सिधारिये। जिस धर्म को स्थापित करते-करते पराक्रमदेव और पूज्यपाद आचार्यदेव को पचास वर्ष हो गये वह आज तुमने देखते ही देखते निर्मूल कर दिया। भले सिधारिये।

उन्दान—हरिसेन, अब हम क्या करेंगे ?

हरिसेन—उन्दान, महादंडनायक, चाहे सर्वस्व चला जाय; पर अपने जीते जी पराक्रमदेव की कीर्ति का लोप होते हुए कैसे देखा जा सकता है। आप सेनानायकों को बुलाइये। मैं अभी आ कर बात करता हूँ।

[जाता है ।]

रामगुप्त—मधुरिका, हम भी चलें, मगध जाने की तैयारी करें। (खिन्न वदन खड़े हुए उन्दान और रोहल की तरफ़ देखता है) आज "देव की जय हो" यह कहने की हिम्मत तो तुम्हारे में कहाँ से हो ? (हँसता है) लड़कियो, चलो !

[परिचारिकायें साथ जाती हैं]

उन्दान—(थोड़ी देर इधर-उधर फिर कर) ओ भगवान् चक्रधर ! यह सब देखने के लिये क्यों जीवित रक्खा ? (निःश्वास छोड़ता है) पराक्रमदेव, व्याघ्रपराक्रम ! सहस्रों समरांगणों में साथ रहे, राजाओं की सेना का संहार किया, दुनिया जीती और उसका दान दिया तब आप को क्या मालूम था कि दो दिन में समस्त अभिलाषा, महत्वाकांक्षा और कीर्ति पर इस तरह पानी फिर जायगा ? मेरे स्वामी, जब तुम गये तो मुझे साथ क्यों नहीं लेते गये ? आज तुम्हारा सर्वस्व गया, साथ में हमारा तेज गया और पूर्वजनों का धर्म लूटा गया। अरेरे ! मेरे मस्तक पर यह देखना लिखा था !

रोहल—और वह भी चुपचाप। जिसकी कीर्ति, राज्य और स्त्री तीनों जा रही थीं उस निर्लज्ज को कुछ भी पर्वाह नहीं थी।

उन्दान—(क्रोधित होकर) हाँ, नहीं थी। (खेद से) रोहल बेटा, मनुष्य मनुष्य में कितना अंतर है ? बाप के जीते जी जिसकी कल्पना भी नहीं कर सकते थे वह बेटे के राज्य में आज सहज में ही सह रहे हैं। मगध की महादेवी इस प्रकार जाये—(दाँत पीस कर) और हम—धर्म-राज्य के स्तंभ—इन आँखों से देखते रहें। (आँसू पोंछता है) रोहल ! एक महात्मा के साथ हम महान् थे उसके बिना आज महिमा विहीन हैं। (विचार करता हो इस प्रकार) इस कीर्ति और राज्य के क्या हम हिस्से-दार नहीं ? क्या उसकी नींव हमारे परिश्रम और रुधिर पर नहीं

रखी गई ? बिचारे लाखों सैनिकों ने इसके लिये अपने प्राणों की भेंट चढ़ायी है।

[नीचे सिर झुकाये दोनों मौन खड़े हैं, चार सेनापति झपाटे से आते हैं और उन्दान को प्रणाम करते हैं।]

सेनापति—दंडनायक की जय !

उन्दान—(खेद से) पुत्रो, आयुष्मान हो !

पहला सेनापति—महादंडनायक यह हमने क्या सुना ? हमारी महादेवी शकपति के यहाँ. . . . . !

उन्दान—(खेद से) तुमने जो सुना वह ठीक है। मेरे बेटा, कल हम हार गये और उज्जयिनी हाथ से निकल गई। आज हम कलंकित हुए और अपनी कीर्ति और धर्म पर भी पानी फिर गया। (आक्रंद से) हमारे देखते हमारी महादेवी को शकपति ले गया। (दाँत पीस कर) और हम खड़े-खड़े देखते रहे।

दूसरा सेनापति—(उग्रता से) पर आपने—आपने यह क्यों करने दिया ? श्रीगुप्तकुल की महादेवी—

उन्दान—(खेद से) मैं कायर बन गया। धर्मभ्रष्ट हो गया। बेटा, कहो जो कहना हो। पर मैं क्या कहूँ ! देव, महाराज और हरिसेन के आगे मैं क्या करता ? आखिर महादेवी ने भी स्वीकार कर लिया। हद हो गई। संसार में मैं अपना क्या मुँह दिखाऊँगा ? (आँसू पोंछता है)

पहला सेनापति—अब कुछ नहीं हो सकता क्या ? कुछ तो करो !

उन्दान—(कटुता से) रामगुप्त ने स्वयं स्वेच्छा से स्वामिनी को दे दिया।

दोनों सेनापति—हैं !

उन्दान—भाई, जो एक पशु भी न करे वह आज हमने परमभागवत को करते देखा। पूछ ले रोहल से। कल इस कायर के कारण ही हारे,

आज यह दशा हुई। दत्तदेवी और आचार्यदेव ने क्या सोच कर राजदंड इसके हाथ में दिया था ?

रोहल—महादंडनायक, गुरुवर, शोक न करो। अब क्या करना चाहिये ? पराक्रमदेव आज होते तो क्या करते ? कुछ करना है या इसी तरह बैठे रहेंगे ?

उन्दान—(कटुता से) पराक्रमदेव आज जीवित होते तो शकपति थर-थर काँपता हुआ गिरनार की गुफाओं में छिप बैठता।

रोहल—दंडनायक, जो हुआ सो हुआ; अब हमें क्या करना चाहिए ? धर्म लुट गया तब भी हम इस कुलांगार की सेवा करते ही रहें ?

दोनों सेनापति—ठीक है। किस लिये करें ?

तीसरा सेनापति—ऐसे कायर स्वामी की सेवा करने के लिये मैं तैयार नहीं।

रोहल—तो फिर अब भी अवसर है। भगवती और आचार्यदेव द्वारा की हुई भूल हम क्यों न सुधार लें ? गुरुवर ने अभी-अभी कहा कि यह कीर्ति और राज्य हमारे पराक्रम पर बने हैं। चलो, महाराज चन्द्र-गुप्त को राजदंड दें और उनकी आज्ञानुसार शकों पर टूट पड़ें। भले ही मर जायें पर सुमौत तो मरें।

उन्दान—(ज़रा धीमे से) ठीक है। यह चन्द्रगुप्त अकेला ही बाप की कीर्ति की रक्षा करे ऐसा है। पर पुत्रो, यह बात तो आधी रही; इस समय कीर्ति के संरक्षण की बात ही कहाँ है ? वह तो जल कर भस्म हो गई। हरिसेन, महादेवी को सौंपने गया है, वहाँ हम किस मुँह से जी रहे हैं और कीर्ति की बात कर रहे हैं ? (खेद से गर्दन हिला कर) इस समय तो एक ही बात है। कीर्ति गई, धर्म गया, तो हम भी जीवित कैसे रह सकते हैं ? मगध की महादेवी दूसरे के हाथ में चली गई; अब हम किस-लिये इस शरीर में प्राण धारण किये रहें ?

पहला सेनापति—कुसुमपुर में किस मुँह से सब बात बतायेंगे ?

उन्दान—और आचार्यदेव तथा दत्तदेवी क्या कहेंगी ?

तीसरा सेनापति—पर तब करोगे क्या ?

रोहल—(अधीरता से) क्या करेंगे ? मरेंगे। कीर्ति-विहीन जीने से तो जिस समय कीर्ति की आहुति दी जा रही हो उसी के साथ जल मरना ठीक है।

उन्दान—रोहल की बात ठीक है। तुम सब जवान हो, मैं वृद्ध हूँ। यह कलंक मुझे नहीं देखना। मैं अब शस्त्रों से सुसज्जित हो कर क्षत्रप पर टूट पड़ता हूँ। (खड़ा होता है)

रोहल—अकेले कहाँ जायँगे ? मैं भी आता हूँ।

उन्दान—(उत्साह से) साथ में जो चलेगा उसे ले लेंगे। शकपति महादेवी को भ्रष्ट करे कि उससे पहले उसको मार देवें या मर जायँ। तुममें से कौन-कौन मेरे साथ चलने को तैयार है ?

रोहल—खूब महादंडनायक ! चलिये। हम—गुप्तकीर्ति के विजय-स्तंभ—गिरेंगे भी तो विजयी बन कर !

उन्दान—और समस्त विश्व कहेगा कि अधमता में जीवित रहने की अपेक्षा हमने मृत्यु का आलिंगन करना श्रेष्ठ समझा।

रोहल—आप कार्तिकेय के अवतार हैं !

सेनापति—हम भी तैयार हैं।

उन्दान—तो पुत्रो, तुम जाओ और योद्धाओं से पूछो कि अपनी दुर्जयता सिद्ध करने के लिये कौन-कौन हमारे साथ चलेगा ? साथ में रह कर हम सब जीवन भर मृत्यु के साथ खेले हैं; आज मृत्यु का आलिंगन करने के लिये कौन-कौन तैयार हैं ? जाओ, जल्दी आना, मैं तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठा हूँ।

पहला सेनापति—हम अब जा रहे हैं पर महाराज कहाँ हैं ?

उन्दान—अंतःपुर में गये हैं, अभी आयेंगे। तुम जाओ, विजय करो (सेनापति प्रणाम कर जाते हैं। उन्दान एक स्थान पर बैठ जाता है

और एकटक से पृथ्वी की ओर देखता रहता है) एक पहर में हम छापा मारेंगे और वीरों को शोभे ऐसी मृत्यु प्राप्त करेंगे। और रात को पितृ-लोक में.....पराक्रमदेव प्रसन्न होंगे.....और यह लड़का। भगवान विष्णु, पराक्रमदेव और दत्तदेवी का यह पुत्र ! ऐसे लड़के से बाँझ मर जाना उत्तम।.....कैसा बाप ! कैसी माँ ! कैसी स्त्री ! कैसा भाई ! और.....और कैसा स्वयं ! विधाता की सृष्टि भी अद्‌भुत है।

रोहल—रामगुप्त का क्या होगा ?

उन्दान—यह मरेगा अपनी मौत। कोई शराबी इसका सिर फोड़ देगा, कोई कुत्ता इसकी हड्डियों को चबा डालेगा !

ध्रुवदेवी—(दौड़ती हुई, आकुल, बिखरे हुए बालों तथा बावली आँखों से अंदर आती है और चिल्लाती है) उन्दान दंडनायक !

उन्दान— } (स्तब्ध होकर) स्वामिनी, तुम ?
रोहल— }

ध्रुवदेवी—(पागल सी) हाँ मैं। उन्दान क्या देख रहे हो ? कुछ करो, दौड़ो, महाराज को बचाओ।

उन्दान—(पास दौड़ कर) पर तुम कहाँ से ? क्या है ? क्या हुआ ?

ध्रुवदेवी—(जल्दी-जल्दी बोलते हुए) महाराज ने मुझे जाने नहीं दिया, स्वयं और तुम्हारे आम्रकर्दव और दूसरे बीस योद्धा स्त्री का वेश बना कर हरिसेन के साथ शकपति के यहाँ गये हैं। उन्हें बचाओ।

उन्दान—(चकित हो कर) आपको बचाने के लिये महाराज स्त्री वेश में गये ?

ध्रुवदेवी—(काँपते हुए) मुझे बचाया, गुप्तों की कीर्ति बचायी पर स्वयं मरे। कुछ करो, दंडनायक उठो !

उन्दान—(गर्व से) धन्य है हमारे महाराज को ! पराक्रमदेव की यह सजीव मूर्ति हैं।

ध्रुवदेवी—(अधीरतासे) अरे, पर कुछ करो तो ! वह पशु उन्हें पहचान लेगा और मार डालेगा। पहर दो पहर की बात है। (आँखों पर हाथ रखकर) वे मर जायँगे तो समस्त पृथ्वी को अंधकार ढक लेगा।

उन्दान—(उत्साह से) स्वामिनी, नही ढकेगा। महाराज जैसे आदित्य के होने पर अंधकार कैसे हो सकता है ? स्वामिनी, हम जा रहे हैं। महाभागवतों के तप और धर्म सहायक होंगे। रोहल, शंख फूंक, नायकों को बुला। महाराज—मेरे महाराज, मेरे बाल स्वामी, अकेले अरिनगर में क्षत्रप को मारने गये हैं और हम भी जा रहे हैं। शंख फूंक ! भट्टिणी, इस गुप्तकुल की कीर्तिध्वजा को लौटा लायेंगे नहीं तो प्राण दे देंगे।

ध्रुवदेवी—मुझे भी ले चलो।

उन्दान—नहीं स्वामिनी, यह तुम्हारा काम नहीं।

ध्रुवदेवी—महाराज मरें उससे पहले मुझे मरना है।

उन्दान—आप सुरक्षित रहोगी तभी वे बच सकेंगे। यह ज़िद का समय नहीं। देव के अंगरक्षक यहीं हैं, वे आपकी रक्षा करेंगे। नहीं तो सब श्रीगरुड़ध्वज के अधीन तो हैं ही (सेनानायक दौड़ते-दौड़ते आते हैं) आओ, आओ, मेरे योद्धाओ, वीरो सुना ? शकपति ने अपनी महादेवी को स्वीकार कर हम लोगों को जीवित छोड़ दिया है, और महादेवी के बदले महाराज स्त्रीवेश में शकपति के पास गये हैं। मैं और रोहल उनकी रक्षा के लिये जा रहे हैं। कौन-कौन साथ चलता है ? बोलो, कायर हो तो यहीं रहना और जिसे अपने प्राण प्रिय हों वह भी यहीं रहे। मेरे वीरो आज समय है, बोलो कौन-कौन चलेगा ?

सब—सब, सब !

उन्दान—पुत्रो, महाराज के प्राण पराक्रमदेव की कीर्ति, आचार्य-

देव का धर्म तुम्हारे हाथ में हैं। वत्सो, चलो उसे ले आयें। बोलो पराक्रम-देव की जय ! जहाँ धर्म वहाँ विजय !

सब—पराक्रमदेव की जय ! जहाँ धर्म वहाँ विजय !

[सब योद्धा जाते हैं]

ध्रुवदेवी—गये, सब गये। वापिस आयें, जब तक.....जब तक कैसे प्रतीक्षा कर सकूँगी ? इन सब में एक ही नरवीर, एक ही पुरुष है। उसका क्या होगा ? क्या होता होगा ?

[विचारों ही विचारों में वह तीन चार घड़ी बिता देती है। धीमे-धीमे अँधेरा होता जाता है। थोड़ी देर में एक परिचारिका आकर दो दीवारों पर दो दीपक जला जाती है। पल भर के लिये दृश्य स्थिर हो जाता है। समय बीत रहा है। थोड़ी देर में शराब के नशे में चूर राम-गुप्त हिचकियाँ खाता हुआ आता है। पीछे एक यवन सुंदरी भी नशे में लड़खड़ाती आती है। उसके हाथ में एक पक्षी है वह उसे उड़ा-उड़ा कर अकेली हँसती है। रामगुप्त आता है और चारों ओर देखता है फिर "पराक्रमदेव की जय" की स्पष्ट घोषणा सुनाई देती है।]

रामगुप्त—(चौंक कर) पराक्रमदेव की ज—जय ! मूर्खो ! मूर्खो ! यह घोषणा सुन-सुन कर मैं थक गया। कितने ही जीवित आदमी पीड़ा पहुँचाते है और कुछ मरने के बाद ! पराक्रमदेव जीते जी और मरने पर भी पीड़ा ही पहुँचाता रहा (बैठता है) मालिका, बैठ। अब कुसुम-पुर जाने की तैयारी करें। वहाँ—वहाँ शीतल समीर और सुन्दर चन्द्र-शालायें मिलेंगी। इस अभागी भूमि में गर्मी और धूल.....भुखमरी और मुर्दे....और पराक्रमदेव की जय—त—था—तथा जहाँ धर्म वहाँ....वि..जय।

[वह झोंका खाता है, मालिका भी अपने को पीछे संभालती सँभा-लती ज़मीन पर गिर जाती है। रात होती है, अनेकों घड़ी बीत जाती हैं। ध्रुवदेवी चिंतातुर मुख से आती है।]

ध्रुवदेवी—(स्वगत) समय किसी तरह बीतता नहीं। क्या हुआ होगा ? इतनी अधिक देर क्यों लग गई ? क्यों कोई संदेशा नहीं लाता ? महाराज का क्या होता होगा ?

रामगुप्त—(एकदम चौंक कर जगता है और आँखे मलता है) यह कौन है ? कौन मधुरिका ? नहीं ? (फिर से आँखें मलता है। चौंक कर) कौन ध्रुवदेवी ? यह कौन ? महादेवी ? (आँखें जोर से मींचता है) स्वप्न में भी मेरे यही आती है। यह नहीं हो सकती। उसे तो शकपति ले गया। (फिर से आँखें खोलता है। चौंकता है और आँखें मलता हुआ बैठ जाता है) कौन ध्रुवदेवी ? (लड़खड़ाता हुआ उठता है) देवी ! (ध्रुवदेवी उसको पीछे आता हुआ देख कर चौंकती है) वापिस कहाँ से आ गई ? मैंने तो तुझे दे दिया था। मुझे तुझसे कोई काम नहीं। (आँखें मलता है) ध्रुवदेवी—ध्रुवदेवी—ध्रुवदेवी !

ध्रुवदेवी—(कठोरता से) क्यों ?

रामगुप्त—तू कहाँ से आई ? चली जा।

ध्रुवदेवी—(माथे पर हाथ रख कर निःश्वासें छोड़ती है) मैं गई ही नहीं।

रामगुप्त—(आँखे फाड़कर) गई ही नहीं ? क्या हुआ ? शकपति तुझे नहीं ले गया ? क्या संधि नहीं हुई ? क्या मैं कुसुमपुर नहीं जा सकूँगा ? बोल बोल ! (ध्रुवदेवी का हाथ पकड़ने जाता है पर वह झटक देती है) मैं नहीं जा सकूँगा ?

ध्रुवदेवी—(तिरस्कार से) जाना हो तो जाओ।

रामगुप्त—तू शकपति के साथ क्यों नहीं गई ? तुझे हुआ क्या ?

ध्रुवदेवी—(क्रोध से) जो होना था सो हुआ। तुम्हें क्या मतलब ?

रामगुप्त—(हास्य-जनक रीति से गर्दन हिला कर) वह चन्द्र कहाँ गया ? बता !

ध्रुवदेवी—(कटुता से) तुम्हारी कीर्ति को सुरक्षित रखने के लिये शकपति के यहाँ गया है।

रामगुप्त—शकपति के यहाँ ? किस लिये ? संधि करने के लिये ? (ध्रुवदेवी जाने लगती है उसका हाथ पकड़ता है महादेवी फिर से उसका हाथ झिड़क देती है) क्या सलाह करने उसके यहाँ गया ?

ध्रुवदेवी—मेरे बदले, स्त्री का वेश धर कर।

रामगुप्त—(हँस कर) हा—हा—हा—समझा। हा—हा। अब समझा। इसीलिये इस प्रकार रोती सूरत बना कर खड़ी है! यह भी ठीक किया। तेरे बदले वह गया!

ध्रुवदेवी—(आकुलता से) ओ भगवान् लक्ष्मीपति!

रामगुप्त—(अपने आप हँस कर) समझा समझा, हा—हा—हा। ध्रुवदेवी, वह गया। चलो तब, तुम तैयार हो जाओ। मैं अब पाटलिपुत्र जा रहा हूँ। तुमको भी ले जाऊँगा।

ध्रुवदेवी—मैं यहाँ से हिलने वाली नहीं।

रामगुप्त—समझा। हा—हा—हा। चन्द्र की बाट देख रही हो। ठीक है, जैसे उसको तो क्षत्रप छोड़ ही देगा ? तैयार हो जाओ चलो! (हिचकी खाता-खाता चला जाता है)

ध्रुवदेवी—(तिरस्कार से देखती हुई, स्वगत) ओ भगवान्! अभी तक क्यों कोई नहीं आया ? क्या होने वाला है ? (माथा ठोंकती है) महाराज का क्या हुआ होगा ? देवाधिदेव! चक्रधारी! उनकी रक्षा करना। उनके और मेरे पूर्वजों के तप उनकी सहायता करें। ओ भगवान्, मेरी आयु चाहिये तो ले ले, पर उन्हें चिरंजीवी कर।

[बैठ कर, रात भर जागती हुई रोती रहती है। एक घड़ी रात बीत जाती है। माधवी और कालिदास चिंताग्रस्त प्रवेश करते हैं। कालिदास पैर और माथे पर घायल है और माधवी के कंधे पर हाथ रख

कर लँगड़ाता हुआ आता है। कविता भूल कर इसने भी शस्त्र धारण किये हों ऐसा लगता है।]

माधवी—(कालिदास का हाथ पकड़ कर) प्रियतम ! क्या होने वाला है ? मेरा जी तो बड़ा घबरा रहा है।

कालिदास—प्रिये ! अमावस्या का अंधकार फैल गया है। मुझे कुछ नहीं दिखाई देता। दूसरे ही क्षण क्या हो जायेगा यह मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। समस्त उज्जयिनी में मेरे और तेरे जैसे निर्बल प्राणियों के अतिरिक्त सब अरिपुर पर चढ़ गये हैं।

माधवी—(निःश्वासें छोड़ कर) ओ भोलानाथ क्या होगा ?

कालिदास—प्रिये ! या तो मेरा मित्र कुमौत मारा जायगा और मगध का धर्मराज्य धूल में मिल जायगा, नहीं तो शकपति के साथ युद्ध करना पड़ेगा। और रुधिर की नदियाँ बह जायेंगी। जो होना होगा वह होगा, पर हमसे शांति-पूर्वक बैठ कर वागीश्वरी की उपासना नहीं हो सकेगी।

माधवी—हम इस प्रकार बैठे हैं और यदि हम पर शक टूट पड़ें तो ?

कालिदास—प्रिये, मैं इतना बलवान नहीं हूँ कि सामना कर सकूँ और न मैं कायर हूँ कि शकपति की शरण में चला जाऊँ। रवि के प्रताप से जिस प्रकार कमल खिलता है उसी प्रकार श्रीगुप्त वंश के प्रताप से हम विकसित हुए हैं। रवि यदि अस्त हो गया तो हम भी संकुचित हो जायँगे।

माधवी—हम यहाँ न आये होते तो कैसा अच्छा था !

कालिदास—कहते हैं, जीने से देखना भला है। बुझते हुए प्रदीप के सदृश मगध के बुझते हुए पराक्रम की अंतिम भभक तो देख ली।

माधवी—और उस नीच कुकर्मी की अधमता भी देखी।

कालिदास—और जिस प्रकार दो दिशाओं में आमने-सामने विद्युल्लेखा चमके उसी प्रकार दो पराक्रमी आत्माओं का चमत्कार देखा।

माधवी—महाराज और स्वामिनी का।

कालिदास—(खेद से) विधि ने यदि यह उलटा लेख न लिखा होता तो—

माधवी—मरे वह विधात्री ! उसने तो मगध को जड़ से उखेड़ फेंका। पर वह गया क्या ?

कालिदास—यहीं है, बैठा बैठा मौज करता है। उसे ले जाने वाला भी तो कोई चाहिये न ? प्रिये ! यदि महाराज को कुछ हो गया तो मुझे मगध में नहीं रहना।

माधवी—यहाँ से कुशल-पूर्वक वापिस लौट जायँ तो भगवान् पार्वती-पति को सवा लाख बिल्वपत्रों से रिझायेंगे (बाहर से लोगों की आवाज़ और घोड़े की टापें सुनाई देती हैं। भय से) यह क्या शक आ पहुँचे ? कहाँ जायेंगे ?

कालिदास—(खड़ा होकर, लँगड़ाता हुआ खिड़की के पास जाता है) देख, देख ! मशालें आती हुई दिखाई दे रही हैं। विजय-घोषणा करती हुई सेना आ रही है। मर गये। (घबरा कर देखता है। दूर से स्पष्ट आवाज़ सुनाई देती है—"पराक्रमदेव की जय") है ? सुना ? हम जीत गये प्रिये ! (माधवी को गले से लगा लेता है) देख, सुन। यह उन्दान की आवाज़ (आवाज़ सुनाई देती है—"महाराज चन्द्रगुप्त की जय !") बाले ! महाराज वापिस आगये,—विजय हुई। तू यहीं खड़ी रह। मैं महाराज को ले आऊँ। (वह लकड़ी लेकर लँगड़ाता हुआ बाहर जाता है। जय-घोषणा पास आती जाती है।)

ध्रुवदेवी—(एकदम सिर ऊपर उठा कर ध्यान से सुनती है और चौंक कर) क्या हुआ ? यह कौन आया ? यह किसकी आवाज़ सुनाई दे रही है ? माधवी ! क्या महाराज आये ?

माधवी—(दौड़ती हुई पास जाती है) भट्टिणी, घबराओ मत। महाराज और उन्दान शकपति को हरा कर वापिस आ रहे हैं।

ध्रुवदेवी—(सहर्ष और शीघ्रता से पास जाती है) हाँ, महाराज स्वयं ! देख, देख, माधवी जहाँ धर्म वहाँ जय !

[दोनों आतुरता से खिड़की के बाहर देखती रहती हैं। पीछे से गुह-सेन आता है। गुहसेन प्रचंड, पर स्वरूपवान, हँसमुख दिखाई देने वाला सुन्दर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित योद्धा है। वह हँसता-हँसता महादेवी के पास आता है।]

गुहसेन—भट्टिणी की जय ! देव आज्ञा करते हैं कि आप उनके साथ मगध चलने के लिये पधारें (ज़रा हँस कर हाथ जोड़ कर खड़ा रहता है)

ध्रुवदेवी—(उसकी ओर कठोरता से देख कर) इस समय ? मैं नहीं चलूँगी।

गुहसेन—(हाथ जोड़ कर हँसता है और नीचे झुकता है) महादेवी, देव की आज्ञा है।

ध्रुवदेवी—(तिरस्कार से उसकी ओर पीठ फेर कर) माधवी ! देख महाराज महालय के पास आने लगे....देख अब घोड़े पर से उतरेंगे। देख तो सही, विजयमद से उन्मत्त महारथियों ने उनको चारों ओर से कैसे घेर रक्खा है। (गुहसेन की तरफ़ फिर कर गुस्से में) चला जा, क्यों खड़ा है ?

गुहसेन—(हाथ जोड़ कर मीठी हँसी हँसता है) देव की आज्ञा है आपको ले आने के लिये (धीमे से)—किसी भी तरह।

ध्रुवदेवी—भाग जा, मैं नहीं चलूँगी। (गुस्से में खिड़की की तरफ फिरती है) माधवी, घोड़े पर से उतर गये। देख, सीढ़ियों पर चढ़ रहे हैं।

गुहसेन—(हँस कर) भट्टिणी, चल रही हो या नहीं ?

ध्रुवदेवी—(सहर्ष) आ गये, माधवी !

[गुहसेन पीछे से ध्रुवदेवी के मुँह पर हाथ रख कर उसको उठाता

है, ध्रुवदेवी छूटने के लिये हाथ पैर पटकती है पर गुहसेन की शक्ति के आगे एक नहीं चलती।]

माधवी—(गुहसेन को पकड़ कर) खड़ा रह, पापी! कहाँ जाता है?

[माधवी गुहसेन को पकड़ने के लिये जाती है पर गुहसेन उसे जोर से धक्का देता है। माधवी गिर पड़ती है। गुहसेन ध्रुवदेवी को लेकर भाग जाता है। इतने में आगे वाले भवन में आ पहुँचे वीरों की आवाज सुनाई देती है।]

रोहल—(बाहर से) महाराज की जय!

चन्द्रगुप्त—(बाहर से फटी हुई काँपती आवाज़ में) योद्धाओ, सैनिको! पराक्रमदेव की जय! महादेवी की जय! जाओ जाओ एक एक शक का संहार करो। जहाँ धर्म वहाँ जय!

योद्धागण—(बाहर से) महाराज की जय! जहाँ धर्म वहाँ जय!

उन्दान—(बाहर ज़ोर से लोगों से कहता है) वीरो, श्रीगुप्त तिलक महाराज चन्द्रगुप्त ने शकपति का संहार किया। जाओ उज्जयिनी में से एक-एक शत्रु को ढूंढ़-ढूंढ़ कर संहार करो।

चन्द्रगुप्त—(बाहर से) उन्दान, तुम सेनापतियों को आज्ञा दो। मैं स्वामिनी को ख़बर सुना आऊँ। (हर्षोन्मत्त अंदर आता है, वह दो-चार जगह से घायल है) स्वामिनी! स्वामिनी! शकपति को मैंने मार डाला। कहाँ हो? (आगे आ कर) कौन है? माधवी! (माधवी अपना माथा दबाती हुई बैठी है) माधवी, क्या हो गया है? स्वामिनी कहाँ है? क्यों कोई दिखाई नहीं देता?

माधवी—(रोते हुए) महाराज, भट्टिणी को वह मुआ कलमुंहा—गुहसेन उठा कर ले गया।

चन्द्रगुप्त—(आँखें निकाल कर) गुहसेन?

माधवी—(काँपते हुए) हाँ, देव की आज्ञा से। देव उनको ज़बरदस्ती मगध ले गये हैं।

कालिदास—(आकर माधवी के पास जाता है।) माधवी ! क्या हो गया ?

चन्द्रगुप्त—(फीका पड़ कर घबराहट से चारों तरफ़ देखता है) स्वामिनी गईं ! गुहसेन उठा ले गया ! (सिर झुकाता है और निर्जीव प्राणी की तरह एकटक नीचे देखता रहता है। थोड़ी देर में वेदनामय मुख ऊपर उठाता है और निस्तेज आँखों से आस-पास देखता है) स्वामिनी गईं ! (आँखें बंद कर सिर पर के बाल ऊपर खींचता है) कालिदास, मुझे ले जा.....मुझे बहुत घाव लगे हैं.....(हाथ फैलाता है और कालिदास के आने से पहले ही पृथ्वी पर गिर पड़ता है।)

[पटाक्षेप]

अंक तीसरा

[समय—लगभग पाँच महीने के उपरांत; एक प्रभात।

स्थल—राजमहल के पास वाले आम्रवन में आचार्य याज्ञवल्क्य की पर्णकुटी के सामने का भाग। जनक विदेही के दरबार में रहने वाला मैत्रेयी का पति याज्ञवल्क्य नामधारी योगीश्वर, मिथिला में समुद्रगुप्त के समय में अवतरित हो गया था। समुद्रगुप्त ने उनको गुरुपद दिया था; आचार्य ने स्मृतियों में श्रेष्ठ याज्ञवल्क्य स्मृति रची, समुद्रगुप्त द्वारा जीती हुई पृथ्वी को शांति और शुद्धि का मार्ग बताया। शिष्य की दिग्विजय को गुरु ने धर्म का प्रकाश दिया और राजकीय एकतंत्र तथा नैतिक, सांसारिक और सांस्कारिक एकता प्रदान की। इनकी आज्ञा से समुद्रगुप्त ने अश्वमेध किया और इनकी चरण-आराधना के लिये देश-देश के वेदविद् आये। आज इनके कारण यह आश्रम और इस आश्रम के कारण कुसुमपुर विद्या और जीवन का केंद्र हो गया है।

अभी सूर्य ने आग बरसानी आरंभ नहीं की। एक वृक्ष के थाले के ऊपर एक ब्राह्मण ताड़पत्र की पोथी बाँच रहा है। दूर से वेदध्वनि आती हुई सुनाई दे रही है। झोंपड़ी के द्वार बंद हैं। एक वृद्ध ऋषि आता है, झोंपड़ी की ओर देखता है और चल देता है। इतने में सामने से कालिदास आता है।]

कालिदास—(नमस्कार करता है) कौन सांख्याचार्य ?

[ब्राह्मण के चरण-स्पर्श करता है]

सांख्याचार्य—कालिदास ! दीर्घायु हो ! आचार्यदेव कहाँ हैं ?

कालिदास—(हाथ जोड़कर) स्नान करने गये होंगे। क्यों कुछ काम है ?

सांख्याचार्य—(दाढ़ी पर हाथ फेर कर) मैं आचार्यदेव से अपना संकल्प बताने आया था। मैं अपने शिष्यों सहित यहाँ से चला जाने वाला हूँ।

[पोथी पढ़ता हुआ ब्राह्मण चल देता है]

कालिदास—चले जायँगे ? कहाँ ? क्यों ?

सांख्याचार्य—कालिदास ! विद्या की वृद्धि कुसुमपुर में अब शक्य नहीं। यहीं रह कर मैं करूँ क्या ? मेरे शिष्यों को पूरा भिक्षान्न मिलता नहीं। प्रतिदिन कोई न कोई ज्ञानी यहाँ से चला जाता है। जहाँ विद्या के सानुकूल राजा नहीं वहाँ रह कर ही क्या किया जाय ? तेरे जैसे रसिक जीव को, न मालूम, यहाँ रहना कैसे अच्छा लगता है ?

कालिदास—आचार्य, मेरी तो विद्या और रसिकता दोनों सूख गई हैं, पर करूँ क्या ? आचार्य देव हैं तब तक कैसे जाया जा सकता है।

सांख्याचार्य—तू आचार्यदेव से कह देगा ? मैं फिर मध्यान्ह में मिलूँगा। अब इस भूमि में एक क्षण भी बिताना बुरा लगता है। वत्स, दीर्घायु हो !

[कालिदास चरणों में गिरता है और आचार्य आशीर्वाद देकर चले जाते हैं।]

कालिदास—(स्वगत) जब राज्य का पुण्य समाप्त हो जाता है तो विद्या राज्य छोड़ कर चली जाती है। इस विद्याभूमि की भी क्या यही दशा होने वाली है ? मुझे तो ऐसा लगता है कि थोड़े दिनों में एक परिषद इकट्ठी करना भी कठिन हो जायगा (निःश्वास छोड़ कर) और इस मेरे मित्र को क्या सूझा ? भगवान् कुसुमायुध तूने भी अब हद कर दी है। (विचार कर) साहस की भी कुछ मर्यादा होनी चाहिये या नहीं ! (निःश्वास छोड़ता है) प्रमत्त की गति के पीछे तो मेरी कल्पना भी कुंठित हो गई है।

माधवी—(पीछे से आकर) क्यों क्या हो गया है तुम्हारी कल्पना को ? कल तो कल्पना के बहुत से घोड़े दौड़ा रहे थे।

कालिदास—(खेद से गर्दन हिला कर) माधवी, हँसना छोड़ दे। महाराज भिक्षु वसुबंध[1] के साथ कुसुमपुर आये हैं।

माधवी—हैं ? बहुत बुरा हुआ।

कालिदास—(धीमे से) तू धीरे बोल।

माधवी—(धीमे से) पर वह इनके प्राण ले लेगा।

कालिदास—मुझे भी यही भय है। परसों ये उसी भिक्षु के साथ वापिस जाने वाले हैं, यही संतोष की बात है। आचार्यदेव की आज्ञा से मैं उनको यहाँ बुला लाने गया था।

माधवी—क्यों ?

कालिदास—(न सुनाई दे इस प्रकार थोड़ी देर बातचीत कर) अब तू जल्दी जा। भट्टिणी को किसी भी तरह यहाँ ले आ।

माधवी—आर्यपुत्र ! हम अपने ऊपर आपत्ति बुला रहे हैं।

कालिदास—जा विजय कर। अपने इष्टदेव पुष्पधन्वा की सेवा में इतना किये बिना कहीं काम चल सकता है !

माधवी—अच्छा, जाती हूँ। (जाती है)

[दत्तदेवी, उन्दान रोहल और हरिसेन आते हैं]

हरिसेन—(खेद से) भगवती ! हमको अन्न अच्छा नहीं लगता; हमारा विजयोल्लास मर गया है। जिन महाराज ने शकों का विनाश किया उनको आज ऐसी दशा में देख कर प्राण निकलते हैं।

उन्दान—(खेद से) मेरी समस्त सेना की आशा भंग हो गई है।

दत्तदेवी—(धीमे से और खेदयुक्त स्वर में) भाई, जब तुम सब की आशा भंग हो गई तो फिर मेरा क्या ? मेरी कोख से, कीर्ति और धर्म

---

[1] भिक्षु वसुबंधु उस समय बौद्धमत के प्रमुख भिक्षु थे।

का एक तो राहू पैदा हुआ और दूसरा आदित्य; तभी तो वह ऐसा पशु बन गया। पराक्रमदेव और मेरा दोनों का जीवन निरर्थक हुआ, यह मैं किससे कहूँ? मैं किसके नाम को रोऊँ?

हरिसेन—हमें तो आशा थी कि महाराज की धाक से देव सीधे चलने लगेंगे।

दत्तदेवी—(निःश्वास छोड़कर) बेटा, इसे कोई सीधा नहीं रख सकता। वह, गुहसेन और उसके आदमी जो जी में आता है करते हैं; पराक्रमदेव के योद्धाओं का अकल्प्य अपमान होता है; पूज्यपाद श्रोत्रिय भयभीत होकर मगध छोड़ रहे हैं।

उन्दान—(दाँत पीसकर) हाँ, हद हो गई। कल ही मैंने सुना कि गुहसेन एक ब्राह्मण-कन्या को उठा ले गया।

दत्तदेवी—भाई, मैं क्या करूँ? पराक्रमदेव की कीर्ति और आचार्य-देव के शासन का मैं पग-पग पर पतन देख रही हूँ। तुम्हारे देव जीवित थे तो उनकी केवल एक ही घोषणा थी—जहाँ धर्म वहाँ जय; और अब—

हरिसेन—"अधर्म में ही जय!"

दत्तदेवी—योगीश्वर अपने शिष्यों सहित वाराणसी जाना चाहते हैं।

उन्दान—इसलिये जितनी धाक है वह भी जाती रहेगी।

दत्तदेवी—तात, इस महात्मा के वचन हमारी कीर्ति और शक्ति के मूल हैं; वह चला जायगा तो धर्म भी चला जायगा; मैं भी चली जाऊँगी।

हरिसेन—फिर हमारा और हमारे राज्य का क्या होगा?

दत्तदेवी—जो विधाता ने रचा होगा वह! पर ऐसा जुल्म और ऐसा अधर्म देखा कैसे जाय?

उन्दान—भगवती, तुम्हारी आज्ञा हो तो कल सबेरे उसे उठा लाऊँ और क़ैद कर दूँ।

दत्तदेवी—क्या फ़ायदा? चन्द्र पागल न होता तो दूसरी बात

थी। पर आचार्यदेव कहते हैं कि रामगुप्त न हो तो संपूर्ण पृथ्वी की जितनी एकता है वह भी छिन्न-भिन्न हो जायगी।

उन्दान—(अकुला कर) इसका अर्थ यह कि हम सब पराक्रमदेव की पृथ्वी के संरक्षण के लिये जियें और यहीं यह कलंक सहते रहें ? अच्छा !

दत्तदेवी—भाई, मुझे आशा थी कि ध्रुवदेवी को पुत्र होगा..... पर उस बेचारी ने तो वैराग्य ले लिया है। वह तो धर्म-सेविनी बन गई है। विद्या उसको प्रिय है। वह और क्या करे ? पर उन्दान, कालिदास को मैंने भेजा है इसलिये चन्द्र अभी आयेगा। पर यह दो दिन यहाँ है तो सावधान रहना, इसे आँच न आये क्योंकि रामगुप्त की आँख उस पर है।

उन्दान—रोहल ! तू जा और इस आम्रवन तथा प्रासाद पर पहरा दे। समय है कुछ घटना घटित हो जाये। गुह का मुझे बिल्कुल भरोसा नहीं।

रोहल—जैसी आज्ञा। (जाता है)

दत्तदेवी—मेरे चन्द्र को ऐसा पागलपन सूझ जायेगा यह मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था।

हरिसेन—भगवती, जब से इन्होंने शकपति को मारा तभी से इनकी प्रवृत्ति उदासीन हो गई। उज्जयिनी में कितनी ही रात तक वे महालय की चंद्रशाला में अकेले फिरते रहते थे फिर उनको वैभव व्यर्थ लगा और अब उन्होंने भिक्षु वसुबंध के साथ मैत्री कर ली है।

दत्तदेवी—(आँसू पोंछकर) कार्तिकेय जैसा मेरा बेटा सिर घुटा ले और भिक्षु हो जाय !

[रोती है]

हरिसेन—पराक्रमदेव का पुत्र भिक्षु हो यह मुझसे भी सहन नहीं होता; पर गुह के पापी दूत उनके चारों ओर लगे हैं। वह उसको कब

मार डालें, ज़हर दे दें यह कौन कह सकता है ! इस समय केवल उनके निर्भय रहने का एकमात्र स्थान वसुबंध का संघ ही है।

दत्तदेवी—ठीक भाई, पर बराबर सावधान रहना। जब से मैंने उसके आने की खबर सुनी है तब से मुझे अपशकुन हो रहे हैं।

उन्दान—भगवती ! कुछ होगा नहीं। पर यह यहाँ आये किस लिये ?

दत्तदेवी—उन्मत्त को क्या कहा जाय ?

चन्द्रगुप्त—(बाहर से) सुनते नहीं ? देखते नहीं ? यह किसका घोड़ा आ रहा है ?

हरिसेन—भगवती, महाराज आ गये।

दत्तदेवी—(आँसू पोंछकर) मेरा लाड़ला !

[चन्द्रगुप्त और कालिदास आते हैं। चन्द्रगुप्त ने धोती पहन रक्खी है और कंधे पर एक मैला सा दुपट्टा पड़ा है। उसके बाल बिखरे हुए हैं और आखें पागलों सी हैं।]

चन्द्रगुप्त—(पागल का-सा अभिनय करते हुए) कालिये ! सुनता नहीं ? यह कौन रो रहा है ? तुझे सुनाई देता है न ? कौन, हरिसेन ? ध्रुवभूति का पुत्र ? ठीक बात है न ? सर्वराजोच्छेत्ता समुद्रगुप्त के घोड़े रो रहे हैं।

हरिसेन—महाराज ! क्या कह रहे हैं ?

चन्द्रगुप्त—(धीमे से कान में कह कर) हरिसेन किसी से कहना मत.....पराक्रमदेव के घोड़े रो रहे हैं.....मैं भी रोता हूँ। मुझे शकपति कहता था..... (पास आ कर) बूढ़ी माँ, तुम कौन हो ?

दत्तदेवी—(रोते हुए) मेरा बेटा !

चन्द्रगुप्त—बेटा ! बेटा ! मैं बेटा हूँ अश्वमेधपराक्रम का और महादेवी दत्तदेवी का; पौत्र हूँ महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त का और कुमारदेवी का.....

दत्तदेवी—(रोते हुए) चन्द्र बेटा !

चन्द्रगुप्त—(खेद से गर्दन हिला कर) रोओ, रोओ,..... सभी रोते हैं। पराक्रमदेव के घोड़े भी रोते हैं। उनके आँसू यह रहे मैं ले आया हूँ ! सब समाप्त हो गया। अश्वमेधपराक्रम के घोड़े रोते ही रहते हैं। (रोता है) अंबा ! ये घोड़े चुप नहीं रह सकते ? सब समाप्त हो गया। आचार्यदेव भी कहते थे.....सब समाप्त हो गया।

दत्तदेवी—हाँ, भाई, हाँ ! सब समाप्त हो गया।

चन्द्रगुप्त—अंबा ! आचार्यदेव जब अश्वमेध करा रहे थे तब उन्होंने अश्वों को आज्ञा दी थी—वत्सो, हँसते रहना। पर अंबा ! ओ अंबा ! इस आज्ञा का वे पालन नहीं कर सकते। वे तो रोते ही रहते हैं। उनके आँसू चारों ओर प्रलय का प्रसार कर रहे हैं।

हरिसेन—(समझाते हुए) महाराज, महाराज ! आप शांति से बैठिये। अधीर न होवें।

चन्द्रगुप्त—मैं बैठ कर क्या करूँ ? मेरे बाप के घोड़े रोते हैं, उन्हें कोई चुप नहीं करता ! (हाथ जोड़ कर) कोई तो जाओ !

हरिसेन—महाराज शांत होइये। यह आप क्या कहते हैं ? मैं इन सब घोड़ों को चुप रक्खूँगा।

चन्द्रगुप्त—ये चुप नहीं रह सकते। ध्रुवभूति के पुत्र ! इनके आँसुओं को तो देख ! यह रहे, यह रहे, यह फैले सब जगह, अब हम सब को डुबा देंगे।

दत्तदेवी—वत्स ! तुझे नहीं डुबायेंगे तू घबरा मत।

चन्द्रगुप्त—अंबा ! मैं घबराकर क्या करूँ ? अब घबराने से हो ही क्या सकता है ? सब गया। तुम्हारा किया हुआ अश्वमेध व्यर्थ गया।

उन्दान—(नीची गर्दन रख कर) ठीक बात है।

चन्द्रगुप्त—है ही ठीक बात ! नहीं तो घोड़े रोते क्यों ? मेरे अश्वराजो ! ओ, मेरे प्रिय अश्वराजो....अंबा ! इन्हें चुप करा (दीनता से हाथ जोड़ कर) मैं चरणों में गिरता हूँ, इन्हें चुप रक्खो...यह देख, यह देख, इनके आँसू. देख तो सही, चारों ओर घुसे चले आ रहे हैं... यह देख, मैं डूब गया, तू डूब गई, पराक्रमदेव डूब गये, पितामह और कुमारदेवी डूब गये....देख....देख....

दत्तदेवी—(हरिसेन से) इसके पागलपन में भी विद्वत्ता है। (चन्द्रगुप्त से) हाँ भाई हाँ। सब डूब गये पर मैं तुझे पकड़े रक्खूँगी। (रोती जाती है)

चन्द्रगुप्त—गये....डूब गये सब डूब गये ! रोओ, रोओ, अब रोना ही रह गया है।

उन्दान—(गर्दन हिलाता है) ठीक बात है अब रोना ही रह गया है।

कालिदास—(स्वगत) ओ मेरे बाप, यह बला कहाँ से आई ?

कंचुकी—(बाहर से) देव, इस ओर पधारें, महाराजाधिराज, इस ओर।

हरिसेन—(उन्दान से) ज़रा देखना हाँ !

रामगुप्त—(आकर) क्यों, आज सब यहाँ क्या कर रहे हैं ? अंबा ! प्रसन्न होओ।

दत्तदेवी—(रोती आँखों से) वत्स, दीर्घायु हो।

रामगुप्त—(तिरस्कार से चन्द्रगुप्त की तरफ़ देख कर) इसने यह क्या करना आरंभ कर दिया है ? लोग कहते हैं कि यह पागल हो गया है और भिक्षु होने वाला है। नगर में गप्प उड़ी है कि इसने पराक्रम देव के घोड़ों को रोते सुना है।

दत्तदेवी—(आँसू पोंछ कर) पुत्र, तेरा हीरे जैसा भाई इस समय पशु से भी बुरा हो गया है।

रामगुप्त—अंबा, हीरे सब ऐसे ही निकलते हैं।

चन्द्रगुप्त—(जीभ निकाल कर आँखें फाड़ कर रामगुप्त की तरफ़ देखता है) क्या घोड़े नहीं रोते ?

रामगुप्त—अंबा, इसे कहीं बंद करवा दो। मैंने सुना है कि इसकी बातें सुन कर प्रजा प्रोत्साहित होती है। मुझे कुसुमपुर में विद्रोह नहीं कराना।

दत्तदेवी—(कटुता से) वत्स ! तू किस लिये घबराता है ? परसों तो वह वसुबंध के साथ चला जाने वाला है।

चन्द्रगुप्त—(ऊँची गर्दन कर) शकपति के घोड़े हँसने लगे हैं क्या यह झूठ है ?

[नीचे सिर गिरा कर पड़ रहता है]

कंचुकी—(बाहर से) भट्टिणी, इस ओर पधारें, इस ओर, महादेवी !

ध्रुवदेवी—(माधवी के साथ अंदर आकर दत्तदेवी को प्रणाम करती है) भगवती प्रसन्न होइये।

दत्तदेवी—पुत्री, आयुष्मती हो !

ध्रुवदेवी—(रामगुप्त से) देव विजयी हों।

रामगुप्त—(हँसकर) ओ हो हो हो ! कौन महादेवी ? तुमसे आये बिना न रहा गया ? इस अपने कार्तिकेय को देखा ? हा हा ! इसकी भक्ति कर लो; अगले जन्म में काम आयेगी।

ध्रुवदेवी—(तिरस्कार युक्त शांति से) भक्ति किसकी की जाती है यह अच्युतदेव की पुत्री जानती है।

चन्द्रगुप्त—(ऊपर देख कर दाँत पीसता है और जैसे न पहचानता हो इस प्रकार रामगुप्त की तरफ़ देखता है) महाक्षत्रप, दुष्ट हमारी महादेवी को चाहता है ? श्रीगुप्तकुल को कलंक लगाता है ? (रामगुप्त को) गुप्तकुल-कलंक ! (आँखों से घूरता है) तुझे जन्म देने से दत्तदेवी मर क्यों नहीं गई ?

[पृथ्वी पर दोनों हाथ रख कर हाँफता है]

कालिदास—(स्वगत) ओ भगवन्! यह क्या बोल रहा है? सचमुच पागल हो गया है।

रामगुप्त—(चौंक कर, तलवार आधी खींचता है।) कमीने!

उन्दान—(बीच में पड़ कर) देव, यह उन्मत्त हैं क्या बोल रहे हैं इसका उन्हें कुछ भान नहीं।

चन्द्रगुप्त—(ऊँचा सिर कर) चांडाल, नराधम श्रीगुप्तकुल की महादेवी दूसरों के हाथ में सौंपता है! ध्रुवदेवी क्षमा करो। इतने के लिये मैं—

ध्रुवदेवी—(हतप्रभ होकर स्वगत) ओ भगवन्!

दत्तदेवी—(रामगुप्त से) वत्स, तू यहाँ से चला जा। इस समय इसे होश नहीं और तुझे देख कर यह और भी उन्मत्त हो जाता है।

रामगुप्त—(ज़ोर से हँस कर) मुझे मालूम है, यह क्या चाहता है?

चन्द्रगुप्त—(हँस कर हाथ जोड़ कर) हमारे कुल की राज-लक्ष्मी, क्षमा करो! अरेरे मैंने तुम्हें क्या इसी के लिये यहाँ बुलाया?

दत्तदेवी—(चन्द्रगुप्त के कंधे पर हाथ रख कर) बेटा, मेरे साथ चल और ज़रा शांत हो जा।

चन्द्रगुप्त—(ज़ोर से दत्तदेवी को झिड़क कर) नहीं, नहीं, कभी नहीं। मैं शांत नहीं होऊँगा। भले ही सूर्य स्थिर हो जाये पर स्वामिनी, शकपति के यहाँ नहीं जा सकतीं।

हरिसेन—(खेद से) भगवती, उस दिन के स्मरणों में ही ये विचरण करते रहते हैं। महाराज, भट्टिणी नहीं जा सकतीं। आप चिंता न करें।

चन्द्रगुप्त—(गर्व से) हम मर सकते हैं पर स्वभिमान नहीं बेच सकते। नहीं नहीं। देवी, देह में प्राण हैं तब तक मैं नहीं जाने दूँगा। मुझे जाने

दो। मरने या मारने दो। हरिसेन, गुप्तकुल की कीर्ति अस्त होने को हो तो भले ही हो जाय, पर एक बार अपनी स्वर्णमयी आभा का विस्तार तो कर लेने दो।

[सिर नीचे डाल देता है। ध्रुवदेवी आँखों पर हाथ रखती है।]

रामगुप्त—यह पागल है या नहीं, यह कुछ समझ में नहीं आता।

हरिसेन—(हाथ जोड़कर) देव, आप सिधारिये।

चन्द्रगुप्त—(सिर ऊँचाकर) हरिसेन ! खड़ा रह। मैं यह आया। भगवान् की कृपा महाभागवतों के धर्मराज्य पर है। शकपति, पापी, नराधम, हँसता रह.....तेरी प्रियतमा राह देख रही है..... हाँ। मेरे अधर का स्वाद चखना है ? चखता जा।.....फिर चखने में आनंद नहीं रहेगा। (हँसता है) क्षत्रप ! मुझे यहाँ से जीवित लौट जाने दे, फिर बता दूँगा कि मेरी महादेवी का अपमान करने वाले पिशाच, तेरे पुत्रों की चिता का धुँआ तेरे ही गिरि नगर का गला घोंटेगा। तेरे सौराष्ट्र और आनर्त पर गुप्तकुल का विजय डंका बजेगा। (ध्रुवदेवी और दत्तदेवी रोती हैं। उन्दान आँसू पोंछता है।) (रामगुप्त से) मुझे आलिंगन देना है ? हाँ, आलिंगन कर अपनी मृत्यु का। (हाथ फैलाता है) हरिसेन ! उन्दान ! टूट पड़ो.....शकों का संहार करो। पराक्रमदेव की जय ! महादेवी की जय ! जहाँ धर्म वहाँ जय !

[पृथ्वी पर गिर पड़ता है।]

हरिसेन—(खेद से) यह तेज ! यह वीर्य यह विद्वत्ता—विधाता ने किस लिये हर ली ?

रामगुप्त—हरिसेन ! दुनिया में कुछ भी व्यर्थ नहीं जाता, यह ऐसा न होता तो यह नाटक बार-बार कौन दिखाता ? नाटक समाप्त हो गया। अच्छा, मैं जाता हूँ। (हँसता है)

[क्रोध और दुःख से दत्तदेवी आँखों पर हाथ रख कर रोती है।

रामगुप्त जाता जाता माधवी के पास से जाता है और उसके गाल पर चोंटी काटता है।]

माधवी—(चिल्ला कर, गुस्से से देखती रहती है) ओ बाप रे! देव, आप भूल गये। मैं ब्राह्मण-कन्या हूँ।

[दत्तदेवी और ध्रुवदेवी क्रोध से ऊपर देखती हैं, उन्दान खड्ग पर हाथ रख कर पास जाता है, हरिसेन कठोर मुख से माधवी के पास जा कर खड़ा रहता है।]

रामगुप्त—(ज़ोर से हँसकर) माधवी! हा हा हा! इससे क्या? (फिर हँस कर) कन्या वह कन्या है। ब्राह्मण—

चन्द्रगुप्त—(ज़मीन पर सो रहा था अब उछल कर खड़ा हो जाता है और भयंकर आवाज़ में कहता है) योगेश्वर याज्ञवल्क्य का वचन है—ब्राह्मण-कन्या के संग्रहण के लिये वध।

[वह रामगुप्त की गर्दन पकड़ता है।]

रामगुप्त—(घबराकर) गुहसेन!

चन्द्रगुप्त—योगेश्वर याज्ञवल्क्य का वचन है। (रामगुप्त को उठाता है और बाहर फेंक देता है। जा.....(ज़ोर से हँस कर) मैंने नहीं कहा था—पराक्रमदेव के अश्वराज रोया करते हैं।

[फिर ज़मीन पर बैठ कर सिर नीचे डाल देता है]

दत्तदेवी—(आँसू पोंछ कर) धर्मध्वज सदृश योगेश्वर याज्ञवल्क्य के आश्रम में मुझे यह देखना था?

[माधवी को पास में लेकर उसके माथे पर मुख रख कर रोती है।]

हरिसेन—भगवती! हिम्मत रक्खो।

दत्तदेवी—बेटा, मैं मर क्यों नहीं जाती?

कालिदास—भगवती! महाराज बहुत अधिक भड़क गये हैं। इनको ज़रा सोने दो। भट्टिणी, आप और माधवी ज़रा देर यहीं खड़े रहें, तो मैं अभी भगवती को पहुँचा आऊँ।

ध्रुवदेवी—हाँ, मैं यहीं हूँ। हरिसेन, उन्दान ! तुम भी जाओ। भगवती ! सिधारो। मैं महाराज को आश्रम में पहुँचा कर अभी आई।

दत्तदेवी—उन्दान ! उन योद्धाओं को जल्दी ले आ। मुझे गुह-सेन का ज़रा भी विश्वास नहीं है।

उन्दान—मुझे भी नहीं। मैं अभी चारों ओर चौकी बिठाये देता हूँ। इस आश्रम में ये निर्भय नहीं। न जाने क्या होने वाला है ?

चन्द्रगुप्त—(सिर ऊँचा कर) लाओ या न लाओ, अश्वराज तो रो ही रहे हैं।

[सिर नीचे झुका लेता है। हरिसेन और उन्दान दत्तदेवी के पैरों पड़ते हैं।]

दत्तदेवी—पुत्री, माधवी को मेरे साथ आने दे। यह इस समय घबराई हुई है। कालिदास तू यहीं रह। मैं अभी किसी को भेजती हूँ।

कालिदास—भगवती ! मैं यहीं हूँ। किसी की आवश्यकता नहीं।

[दत्तदेवी और माधवी जाती हैं।]

ध्रुवदेवी—(खेद से सोये हुए चन्द्रगुप्त को देख कर) कालिदास, तेरे महाराज इस दशा में ! मैं क्या करूँ ? इनके अस्वस्थ चित्त को किस प्रकार ठिकाने लाऊँ ? विधाता बहुधा जब मनुष्य की भावि का निर्माण करता है तब उसके हृदय में करुणा का अंश भी नहीं रहता।

कालिदास—भट्टिणी, विधाता ने सृष्टि सृजन का काम मुझे सौंप दिया होता तो....(मौन रहता है) मैं बाहर खड़ा हूँ। स्वामिनी, बीते क्षण वापिस नहीं लौटते।

[चला जाता है]

ध्रुवदेवी—(पृथ्वी पर पड़े हुए चन्द्रगुप्त की ओर एकटक से देख-कर ममता भरी आवाज़ में) तुम्हारी यह क्या स्थिति—और मेरी क्या स्थिति ? विष्णु ने हम दो व्यक्तियों को बनाया किस लिये ! और बनाया भी तो फिर इस प्रकार दुःख क्यों दिया ? (नीचे झुक कर

चन्द्रगुप्त के माथे पर हाथ फेरती है। चन्द्रगुप्त सिर ऊँचा करता है। रोते हुए) महाराज, मुझे पहचानते हैं ?

चन्द्रगुप्त—(हँसकर सिर ऊँचा कर बैठ जाता है) देवी, पहचानता न होता तो कहीं पागल बन कर आता क्या ?

[हँसता है।]

ध्रुवदेवी—(चौंककर, सहर्ष) तुम पागल नहीं ?

चन्द्रगुप्त—(हँसकर) लगता तो हूँ। मैं कुसुमपुर आने और तुमसे मिलने के लिये पागल बना। अब तुमसे मिल लिया अतः अच्छा हो गया हूँ।

ध्रुवदेवी—(काँपते हुए) मुझसे मिलने के लिये यह साहस किया !

चन्द्रगुप्त—(मज़ाक़ में) मैं किसके लिये साहस करता हूँ इसका मुझे भान है। देवी, परसों सुबह वसुबंध मुझे दीक्षा देगा और मैं संसार का त्याग कर दूँगा। संसार छोड़ने से पहले क्या एक बार भी तुमसे न मिलता ?

ध्रुवदेवी—(खेद से) इस उम्र में संसार किस लिये छोड़ रहे हो ?

चन्द्रगुप्त—(मज़ाक़ में) मैं जब तक संसार नहीं छोड़ दूँगा तब तक रामगुप्त मुझे शांति से बैठने नहीं देगा। आज मेरे पीछे जासूस लगे हुए हैं–मुझे मारने के लिये. मुझे ज़हर देने के लिये। कोई भी स्थल मेरे लिये भय रहित नहीं; और मुझे किसी भी वस्तु में रस नहीं आता। मुझे किसी स्थान पर जा कर पड़ रहना है।

ध्रुवदेवी—ऐसा क्यों कहते हो ? तुम पुरुष हो। तुम में पुरुषत्व है। भावी क्या-क्या आशायें तुम्हारे लिये संजोये बैठी है ! किसी दिन पराक्रमदेव की पृथ्वी तुम्हें वरमाला पहनायेगी। कोई.....कोई मदमाती, हँसमुखी कंबुकंठी, गौरव भरी स्त्री, गंभीर नयनों से तुम्हारा भवन सुशोभित करने के लिये तरसेगी.....

चन्द्रगुप्त—(गर्व से) देवी, बहुत हुआ। सच बताऊँ? क्षमा करना; इस समय कोई आ गया तो जो मैं कहने आया हूँ वह रह जायेगा। वह दिन याद है स्वामिनी? उस भयंकर दिन क्षत्रप को मारकर, तुम्हें विजय-संदेश देने के लिये मैं उत्साह-पूर्वक आया। तुमको गुहसेन उठा कर ले गया। निर्जन महालय मेरे उल्लास का उपहास करने लगा। उस समय मुझे ज्ञान हुआ.....मेरा साहस और मेरी आकांक्षायें भाग खड़ी हुईं.....देवी! मैं चेतनाहीन हो गया.....पृथ्वी की मोहनी जाती रही.....मुझे विश्वास हो गया कि मेरा भवन सुशोभित करने के लिये स्रष्टा ने किसी स्त्री का सृजन किया ही नहीं।

ध्रुवदेवी—(नीचे देख कर, वेदना से) मेरे दुर्भाग्य ने तुम्हें भी अभागा बना दिया। मैं तो मुर्दा थी ही, पर तुम भी इस प्रकार....

चन्द्रगुप्त—मर गये। हाँ, इसी कारण से तो मुझे संसार छोड़ना है। संसार मेरे लिये और मैं संसार के लिये मरा हुआ रहूँ, यही मैं चाहता हूँ स्वामिनी!

ध्रुवदेवी—(हाथ जोड़कर) महाराज, कृपा कर हिम्मत न हारिये। तुम्हारे जैसे पराक्रमी के लिये तो यह विशाल अवनि पड़ी है।

चन्द्रगुप्त—(गर्दन हिला कर म्लान वदन से) स्वामिनी! आशा हो तो साहस भी होता है। अब मैं पराक्रम किसलिये करूँ? किसके लिये? चारों ओर अंधकार है, जीवन की दिशा सूझती नहीं।

[आँसू गिराता है।]

ध्रुवदेवी—(काँपते हुए) पृथ्वीपति बनने के लिये पैदा हुए तुम भिक्षु बन कर भीख माँगोगे?

चन्द्रगुप्त—हाँ, जीवन भर। स्वामिनी! यह जीवन निकम्मा हो गया। अगले जन्म देख लूँगा। स्वामिनी! क्या सोच रही हो?

ध्रुवदेवी—(दुखी होकर) मेरे हृदय में इस समय कितनी भावनायें उठ रहीं हैं। मैं क्या कहूँ?

चन्द्रगुप्त—(हाथ जोड़कर) मैं परसों चला जाऊँगा; फिर इस जीवन में मिलना नहीं हो सकेगा। स्वामिनी! कुछ कहो। कुछ ऐसी बात कहो कि जिसका मैं जीवन भर जाप करता रहूँ। एक बार संयम का त्याग कर दो और मुझे अपने वाणी-स्रोत में बहने दो।

ध्रुवदेवी—(हाथ जोड़कर) महाराज! बोलते हुए मुँह से न मालूम क्या निकल जाय? आज कई महीने बीत गये, मैंने मौन को ही मोक्ष माना है। पर एक ही प्रार्थना करती हूँ—विचार करो, विश्व-संन्यास में उतावले न बनो।

चन्द्रगुप्त—विचार? मैं विचार करते-करते थक गया। आज पाँच महीने से मैंने रात-दिन बराबर विचार ही किया है। स्वामिनी! (रोते स्वर में) सृष्टि में से तेज और सौंदर्य का विनाश हो गया है और वह किसी प्रकार भी वापिस नहीं आने वाला.....और मुझसे अंधकार में जीवित नहीं रहा जाता।

ध्रुवदेवी—महाराज, तुम कहते हो तो मैं भी कहती हूँ। यह सुन कर मेरा हृदय फटा जाता है। आज मैं जल-भुन कर जीवन व्यतीत कर रही हूँ और जब तुम—मेरे जीवनदाता, मेरे कार्तिकेय चले जाओगे तो जिस प्रकार मैं आज जी रही हूँ वह भी कैसे जिया जायगा? तुम्हारी बात सच है—जो संसार अच्छा न लगे उसमें रहा क्यों जाय? मैं भी चली जाऊँगी अपने पिता के यहाँ, और लक्ष्मीपति के चरणों में अपने को चढ़ा दूँगी।

चन्द्रगुप्त—उस सुदर्शन चक्रधारी ने एक वर्ष, एक मास क्या एक दिन भी ऐसा नहीं दिया कि जिसकी स्मृति के आधार पर ही जीवन बिता लिया जाय। दो भूल पड़े पशुओं की तरह हम पृथ्वी पर विचरण करेंगे; कोई हमको समझता नहीं और हमें किसी को समझाने जाना नहीं। विश्व की सीमा के बाहर, स्मरण-सृष्टि की वेदना से ही हम घुल-घुल कर—

ध्रुवदेवी—(रोते हुए) और दुःख का कभी अंत भी होगा इस आशा से रहित।

चन्द्रगुप्त—(आक्रंद कर) स्वामिनी, शकपति को मारते हुए मैं भी क्यों न मर गया ?

ध्रुवदेवी—महाराज ! महाराज !

कालिदास—(बाहर से) महाराज !

चन्द्रगुप्त—कोई आया—

[उसका स्वर घुट जाता है।]

ध्रुवदेवी—(रोते हुए) मेरे कार्तिकेय !

[हाथ फैला कर माथे पर हाथ रख कर रोती है]

चन्द्रगुप्त—(रोते स्वर में) स्वामिनी !

ध्रुवदेवी—फिर कब मिलोगे ?

चन्द्रगुप्त—(सिर हिला कर) कभी नहीं !

[रामगुप्त आता है। उसकी आँखें नशे में चूर, लाल सुर्ख हो गई हैं, उसके पीछे गुहसेन तथा एक दूसरा योद्धा आता है।]

रामगुप्त—गुहसेन ! वह खड़ा पागल। पकड़ उसको। क्यों महादेवी अभी तुम यहीं हो क्या ? (हँसता है) बहुत रोना पीटना चल रहा है क्यों ? तुम्हारी कार्तिकेय की भक्ति हो रही है या नहीं ?

चन्द्रगुप्त—(गर्व से आगे आकर) क्या है ? रामगुप्त जो कहना हो मुझसे कह। क्या है ?

रामगुप्त—गुहसेन ! देखता क्या है ? इसे मार डाल ! महादेवी के सामने ही मार डाल। यह इसका प्रिय है, इसे अपने प्रिय का रक्त बहता हुआ देखने दे।

चन्द्रगुप्त—(गर्व से ऊपर देखकर) मुझे मारने आया है ? कुलकलंक ! पराक्रमदेव की जय-घोषणा भूल गया क्या ? जहाँ धर्म वहाँ जय !

रामगुप्त—गुहसेन !

[हाथ से आज्ञा देता है। गुहसेन और उसके आदमी चन्द्रगुप्त को चारों ओर से घेर लेते हैं और सब को ललकारता हुआ चन्द्रगुप्त बीच में खड़ा रहता है।]

चन्द्रगुप्त—मुझे मार डालना है? ले, मार! मार! मझे जीवन से प्रेम नहीं, पर खड़ा रह; मरते-मरते एक अंतिम पुण्यकर्म कर लेने दे।

[वह कूद कर रामगुप्त पर चढ़ बैठता है और उसकी छाती पर चढ़ कर उसका गला दबा देता है। गुहसेन तलवार खींचकर चन्द्रगुप्त को मारने के लिए उद्यत होता है। इतने में उन्दान, हरिसेन और दूसरे योद्धा आ जाते हैं और गुहसेन को पकड़ लेते हैं।]

चन्द्रगुप्त—(रामगुप्त के शव पर से उठ कर अट्टहास करता है) घोड़ो, हँसो हँसो! पराक्रमदेव का पुण्य तप रहा है। कीर्ति और धर्म को निर्मूल करने वालो, चांडालो, अब तुमसे पृथ्वी मुक्त हुई।..... घोड़ो! अश्वराजो!

[पागल की तरह एक ओर बैठ जाता है]

हरिसेन—(नीचे झुककर रामगुप्त को देखता है) उन्दान! देव मर गये! (क्षण भर में हरिसेन की राजनीतिज्ञता सामने आती है और वह गंभीर हो कहता है) मित्रो, अब घबराओ मत! किसी के कान में भी यह बात न जाय इस बात की चौकसी करो। दो आदमी इस गुहसेन को उस पर्णकुटी में बाँध रखो और दो तीन आदमी आस-पास पहरा दो कि कोई यहाँ आने न पावे। रोहल, राजमहालय पर पहरा रख दो। उन्दान, महाराज की आप रक्षा करें। महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त...

चन्द्रगुप्त—नहीं, भूला हरिसेन! पराक्रमदेव के घोड़े रोने लगे। हा हा हा!

[पागल की तरह जाता है। पीछे उन्दान, रोहल और दूसरे सेनापति गुहसेन को तथा उसके साथियों को पकड़ कर ले जाते हैं।]

हरिसेन—कालिदास ! तू यहीं स्वामिनी के पास बैठ। मैं अभी इस शव को उठाकर ले जाने की व्यवस्था करता हूँ और आचार्यदेव तथा भगवती को लेकर आता हूँ। थोड़ी देर में सब को इकट्ठा होना पड़ेगा।

[जाता है]

कालिदास—(रामगुप्त की ओर देखकर) स्वामिनी, पराक्रमदेव जैसे वीर का यह पुत्र.....पृथ्वी, धर्म, कीर्ति और स्नेह सब इसको विरासत में मिले.....पर फिर भी यह रहा भिखारी का भिखारी ही। देव को जिसने अप्रसन्न कर दिया उसके पास सर्वस्व हो तो क्या और न हो तो भी क्या ! इसने न जाना शौर्य और न जानी कीर्ति; न खोजा परमार्थ और न अपनाया धर्म; न संचय किया बुद्धि का और न पोषण किया सद्भाव का। राख का व्यापार करते हुए आखिर इसके हाथ में राख की राख ही रही।

ध्रुवदेवी—कितने ही पैदा होते हैं, प्रजा के हृदय में चिरस्मृति के लिये; कितने ही मर जाते हैं प्रजा की सत्वर विस्मृति के लिये।

कालिदास—स्वामिनी ! क्या होगा अब ?

ध्रुवदेवी—मैं यही तो सोच रही हूँ।

[माधवी चार आदमियों को ले कर आती है]

माधवी—स्वामिनी ! प्रसन्न हों। (आदमियों से) इसे उठा कर ले जाओ और उस पर्णकुटी में रखना। किसी से कहना मत।

परिचारकगण—जैसी आज्ञा !

ध्रुवदेवी—क्या है माधवी ?

माधवी—स्वामिनी ! भगवती, महामंत्री वात्स्य और हरिसेन ने निश्चय किया है कि अभी किसी को कुछ कहना नहीं। समय है, कुसुमपुर में हाहाकार मच जाय। अभी सब आ रहे हैं।

[माधवी और आदमी जाते हैं।]

चन्द्रगुप्त—(आता है) बात न करना। कोई बोलना मत.... और बोलो तो सब बोलो। यह घोड़ों की बात है—ऐसी वैसी नहीं—पराक्रमदेव के घोड़ों की, जो सिंधु पार कर गये उनकी। मेरे—

ध्रुवदेवी—महाराज !

चन्द्रगुप्त—तुम्हारे नहीं; मेरे पिता के घोड़े—श्वेत, श्यामकर्ण, दीर्घपुच्छ, चंदन से अर्चित।....

कालिदास—पर महाराज !

चन्द्रगुप्त—तू नहीं जानता यह बात, चंदन से अर्चित, पुष्प से सुशोभित, अश्वमेध के अश्वराज हिनहिनाते हैं।

ध्रुवदेवी—पर अब—

चन्द्रगुप्त—अब—अभी हिनहिनाते हैं। इनके आँसू सूखने लगे.....

उन्दान—(आकर) आचार्यदेव आ गये क्या ?

चन्द्रगुप्त—आचार्यदेव गये।

उन्दान—कहाँ ?

चन्द्रगुप्त—अश्वमेध में।

ध्रुवदेवी—अभी आते हैं। तुम नगर में ठीक-ठीक व्यवस्था करा आये ?

उन्दान—हाँ, स्वामिनी ! किसी प्रकार की चिंता नहीं। सेना दंडनायकों के हाथ में है। राजमहालय और कोषागार पर अब पहरा रहेगा। गुहसेन के योद्धाओं को पकड़-पकड़ कर क़ैद में डालना आरंभ कर दिया गया है।

चन्द्रगुप्त—(बड़बड़ाता है) किस लिये रोते हो अश्वराजो ?

ध्रुवदेवी—अभी माधवी कह गई थी कि बाहर किसी को कुछ भी पता न लगना चाहिये।

उन्दान—ख़बर पड़े बिना भला रह सकेगी ? भगवती और महामंत्री आ गये।

[भगवती दत्तदेवी रोती-रोती आती हैं। साथ में महामंत्री वात्स्य आता है। वात्स्य साठ वर्ष का तेजस्वी, विद्वान् ब्राह्मण है। उसकी आँखें छोटी-छोटी हैं और, उसके मुख पर धूर्तता लक्षित होती है। पराक्रमदेव के इस विश्वासपात्र मंत्री के आधार पर ही रामगुप्त का राज्य चलता है ऐसी सब की सकारण ही धारणा है और यह इस समय सब के मुख पर परिलक्षित होती है।]

चन्द्रगुप्त—(खिलखिला कर हँस पड़ता है) हा हा हा। बेचारा बूढ़ा वात्स्य ! हा—हा—हा—हा—हा।

ध्रुवदेवी—भगवती प्रसन्न हों (दत्तदेवी चुपचाप आशीर्वाद देती हैं) मंत्रीवर ! मैं वंदना करती हूँ।

वात्स्य—महादेवी, स्वस्ति !

चन्द्रगुप्त—(बड़बड़ाता है) देव तुम यहाँ बैठो.....दत्तदेवी, यहाँ बैठो। राजन्, ...हा—हा—हा।

वात्स्य—भगवती, महाराज तो बिल्कुल उन्मत्त हो गये हैं। यह इन्होंने क्या कर दिया ? समस्त राज्य में उथल-पुथल मचा दी।

दत्तदेवी—हाँ, वात्स्य—पर अब क्या हो सकता है ? कभी-कभी इसे भान आ जाता हो ऐसा लगता है। कुछ दिन इसे यहाँ रखने से सम्भव है, अच्छा हो जाय।

वात्स्य—हाँ, पर अब क्या ? उन्दान ! तुम्हारी सेना के क्या हाल-चाल हैं ?

उन्दान—मेरी सेना से ज़रा भी भय नहीं। मेरे दंडनायक सब विश्वासपात्र हैं। यहीं की सेना विद्रोह कर दे तो दूसरी बात।

हरिसेन—यहाँ के दंडनायकों को बुलाने के लिये मैंने रोहल को

भेजा है पर इससे पहले यह तो निश्चय करो कि ढिंढोरा किसके नाम का पिटवाया जायगा ?

वात्स्य—(तीक्ष्णता से देख कर) भगवती, ढिंढोरा किसके नाम का पिटवाया जाय या तो महाराज के नाम का और या जो भगवती आज्ञा करें तो स्कंद के नाम का। दूसरा कौन है ? यह भी पराक्रमदेव का पुत्र है।

[महादेवी के अतिरिक्त पराक्रमदेव की अन्य पत्नी के पुत्र स्कंद का नाम मंत्री के मुख से सुन कर हरिसेन और उन्दान चौंकते हैं।]

दत्तदेवी—(बुरा लगा हो इस तरह) स्कंद !

हरिसेन—महाराज पागल हो गये हैं यह बात सब को मालूम है। इनके नाम से ढिंढोरा पिटवाने से तो आपत्ति उठ खड़ी होगी।

चन्द्रगुप्त—(पागल की तरह कालिदास को पकड़ कर कहता है) कालिये ! उसकी तरफ़ देख ! हा—हा—हा। वह पराक्रमदेव का मंत्रीश्वर वात्स्य। कोई मान सकता है ? हा—हा—हा।

कालिदास—(धीमे से ज़रा बिगड़ कर) महाराज ! ठीक हो जाओ न ! यह क्या करते हो ?

चन्द्रगुप्त—कालिये ! मूर्ख ! यह वात्स्य हो ही नहीं सकता। यह महामंत्री ? जिसकी नीति का समुद्रगुप्त अनुकरण करता था वह ? जिसके शब्दों से प्रजा का जीवन चलता है वह ? हा—हा—हा नहीं हो सकता। पूछ कर देख, येह कौन है ?

कालिदास—(ध्रुवदेवी को एक ओर बुला कर) इनसे कहो न कि पागलपन न दिखायें।

ध्रुवदेवी—(कालिदास से, ओठ काटकर) मैं कैसे कहूँ ?

चन्द्रगुप्त—पर इसकी दाढ़ी की तरफ़ तो देख ! हा—हा—हा। पराक्रमदेव के घोड़े की पूँछ-सी लगती है।

दत्तदेवी—चन्द्र ! यह क्या बक रहा है ?

वात्स्य—क्रोध न करो। बेचारा पशु जैसा हो गया है। वत्स! तू मेरे साथ चलेगा? (चन्द्रगुप्त सिर हिलाता है। दत्तदेवी से) भगवती, तब क्या करें?

चन्द्रगुप्त—हा—हा—मैं बताऊँ? मैं बताऊँ? महादेवी कुमार-देवी को ले आओ।

[हरिसेन विचार में पड़ता है।]

वात्स्य—बेचारा!

हरिसेन—मंत्रीश्वर, इनके वचनों में सत्यता है। जब तक महाराज उन्मत्त रहें तब तक ध्रुवदेवी के नाम से घोषणा करा दी जाय? भगवती, आपकी क्या इच्छा है?

वात्स्य—(चौंककर) ध्रुवदेवी की?

हरिसेन—गुप्तमहादेवी लक्ष्मी का अवतार है।

दत्तदेवी—हरिसेन! बात तो ठीक है। क्यों वात्स्य?

वात्स्य—इसमें अत्यधिक हानि की संभावना है।

ध्रुवदेवी—(उदासीनता से) भगवती, मुझे नहीं।

वात्स्य—हरिसेन! उन्दान! क्या सोचा?

हरिसेन—मैंने आचार्यदेव से सब कुछ कह दिया है। वे अभी आते होंगे। उन्होंने तो केवल एक ही प्रश्न मुझसे पूछने की आज्ञा दी है।

वात्स्य—कैसा प्रश्न?

हरिसेन—कि पराक्रमदेव का धर्मराज्य चला सके ऐसा कौन है?

दत्तदेवी—मुझे तो इसके सिवाय कोई दिखाई नहीं देता।

ध्रुवदेवी—(उछलते हृदय से) पर—

[चन्द्रगुप्त की ओर देखती है]

चन्द्रगुप्त—(हँसते हुए बड़बड़ाता है) प्रिय अश्वराज, एक बात कान में कहूँ? धीरज रख बेटा धीरज.....

हरिसेन—आचार्यदेव आ गये।

[योगीश्वर याज्ञवल्क्य आते हैं। अत्यंत वृद्ध, गौरवशील और शांत—प्राचीन पुराणों की जैसे सजीव मूर्ति। वे स्नान-संध्या से निवृत्त होकर आये हैं, उनके हाथ में कमंडल है और माथे पर भस्म। वे आते हैं और सब साष्टांग प्रणाम करते हैं।]

याज्ञवल्क्य—वत्सो, धर्मरागी बनो। क्या विचार कर रहे हो?

वात्स्य—योगीश्वर, आपकी क्या आज्ञा है?

याज्ञवल्क्य—मेरी आज्ञा नहीं, पर आशीर्वाद है—जो गुप्तकुल की कीर्ति और सनातन धर्म का भार वहन करने योग्य हो उसको राज्य-तिलक करो। तुम्हें कौन योग्य लगता है?

दत्तदेवी—आचार्यदेव, ध्रुवदेवी को ही राजदंड देना ठीक है।

याज्ञवल्क्य—हाँ, यह सुयोग्य है। चन्द्र ठीक हो जाये तो फिर देखा जायगा।

ध्रुवदेवी—(चिंता से हाथ जोड़ती है) पर आचार्यदेव! मुझे राजधर्म नहीं आता।

याज्ञवल्क्य—(हँसकर) राज्य स्वयं सिखा देगा। धर्म से अप्राप्य की प्राप्ति, प्राप्य का यत्न से संरक्षण, संरक्षित वस्तु की नीति से वृद्धि, और वृद्धि का सुपात्र को दान; इतना ही करना और समझ लेना राज-धर्म आ गया।

हरिसेन—(जिसकी राजनीति इस समय निश्चयात्मक बनती जाती है) तब भगवती! स्वामिनी के नाम की घोषणा करा दूँ।

दत्तदेवी—हाँ, हरिसेन! जा करा दे।

हरिसेन—जैसी आचार्यदेव और भगवती की आज्ञा। स्वामिनी की जय!

[जाता है]

याज्ञवल्क्य—भगवती, मैं अब जाऊँ?

दत्तदेवी—जैसी आचार्यदेव की इच्छा।

याज्ञवल्क्य—वत्सो ! आयुष्मान होओ (हँसकर) महादेवी, गुप्तों से रक्षित पृथ्वी का धर्म से पालन करना।

चन्द्रगुप्त—आचार्य जैसे लगने पर भी जो आचार्य नहीं ऐसा लगता है !

याज्ञवल्क्य—सत्य है। (हँसकर) मैं आचार्य था अब नहीं। भगवती, इसे मेरे पास भेजना।

दत्तदेवी—वसुबंधु इसे ले जाना चाहता है।

याज्ञवल्क्य—नहीं, इसे मत जाने देना। मैं रक्खूँगा।

[जाते हैं]

[बाहर घोषणा सुनाई देती है—'ध्रुवस्वामिनी की जय !' 'पराक्रमदेव की जय !' 'जहाँ धर्म वहाँ जय !']

चन्द्रगुप्त—(सिर ऊँचा कर) ध्रुवस्वामिनीदेवी की जय ! पराक्रमदेव के अश्वदेवों की जय !

दत्तदेवी—इन घोड़ों का पागलपन कौन जाने यह कहाँ से ले आया है ? ध्रुवदेवी, पुत्री विजय करना। अब तक मैं अपने पुत्रों से सुशोभित होती थी पर अब तुझसे सुशोभित हूँ।

ध्रुवदेवी—(चरण-स्पर्श कर) भगवती ! आपके आशीर्वाद से ही मैं जीवित हूँ और सुशोभित हूँ।

हरिसेन—(शीघ्रता से आता है। उसके पीछे एक घुड़सवार आता है) महादेवी की जय ! भगवती प्रसन्न हों। यह एक दूसरी नई आपत्ति आ गई !

दत्तदेवी—
वात्स्य—
उन्दान— } क्या है ?

हरिसेन—उज्जयिनी से यह सेनापति आम्रकर्दव का संदेशा ले आया है। खोलूँ ? (ध्रुवदेवी और वात्स्य 'हाँ' कहते हैं भोजपत्र खोल कर

पढ़ता है, शकपति ने वाकाटक[1] प्रवरसेन के साथ संधि कर ली है और दोनों उज्जयिनी पर धावा करने वाले हैं।

वात्स्य—अरे! इस समय यह विपत्ति कहाँ से आई? मेरी आशंका सत्य हुई।

हरिसेन—(चिंता से) इस समय मालवा की सेना यहाँ से नहीं भेजी जा सकती।

दत्तदेवी—और तुममें से कोई यहाँ से चला जाय ऐसा भी नहीं।

उन्दान—मैं जा सकता हूँ; पर सेना—

ध्रुवदेवी—(धीमे से) मैं चलूँ?

हरिसेन—नहीं स्वामिनी, आपकी तो यहीं आवश्यकता है। (वात्स्य की ओर ध्यान से देख कर) कल उठ कर स्कंद के पक्ष के विद्रोह करें तो? यह आपत्ति अब ऐसे समय पर कहाँ से आ गई?

चन्द्रगुप्त—(बड़बड़ाता है) यह पीड़ा कहाँ से आई? घोड़ो हिनहिनाओ (सब की तरफ़ देख कर) कौन जायेगा? कौन जायेगा? क्षत्रप का पुत्र सिर उठाता है। जा हरिसेन, जाकर कह दे कि मैं आ रहा हूँ। आया—तेरे बाप का काल। पराक्रमदेव के घोड़ो, तैयार हो जाओ! हम अश्वमेध आरंभ कर रहे हैं।

[जाने लगता है।]

उन्दान—महाराज! महाराज!

दत्तदेवी—चन्द्र!

चन्द्रगुप्त—अंबा मुझे मेरे पिता के घोड़े बुला रहे हैं। हम जा रहे हैं। यह चले। हम सौराष्ट्र कुचलने चले। अश्वराजो, चलो!

[घोड़ों की चाल चलने लगता है]

ध्रुवदेवी—(आकुल होकर चन्द्रगुप्त की ओर उदासी से देख कर)

---

[1] उस समय भारतवर्ष के पश्चिमी हिस्से में वाकाटक वंश की सत्ता थी।

भगवती, इन्हें अच्छा लगे तो जाने दो। साथ में उन्दान और आम्रकर्दव हैं, अतः कोई चिंता की बात नहीं। यहाँ शान्त हो जाने पर हरिसेन को लेकर मैं पहुँचूँगी।

हरिसेन—स्वामिनी ठीक कहती हैं। महाराज वहाँ जायँगे तो स्वस्थ होंगे, और थोड़ी सी मगध की सेना भी वहाँ चली जाय तो कुछ बुराई नहीं। कालिदास! तू भगवती को ले जा।

कालिदास—(थका हारा) हाँ, मैं तैयार हूँ पधारो भगवती!

दत्तदेवी—पुत्री, विजय कर। वत्सो, कल्याण हो!

[दत्तदेवी और कालिदास जाते हैं।]

ध्रुवदेवी—मंत्रीवर! आप और हरिसेन यहाँ का तंत्र अपने हाथ में लीजिये। उन्दान! तुम जाने की तैयारी करो।

वात्स्य
उन्दान
हरिसेन —जैसी स्वामिनी की आज्ञा!

[जाते हैं]

ध्रुवदेवी—(क्रोध में) महाराज! यह कैसी मज़ाक़ ले बैठे हो?

चन्द्रगुप्त—हा—हा—हा—हा। घोड़ो, हिनहिनाओ—मेरे वीरो!

ध्रुवदेवी—(क्रोध का अभिनय करते हुए) पर यह तुम करने क्या लगे हो?

चन्द्रगुप्त—पराक्रमदेव के घोड़े बुला रहे हैं। आया, आया!

[दौड़ कर जाता है।]

ध्रुवदेवी—(दुखी होकर) ओ भगवन्! मैं थोड़ी देर पहले निराधार थी, इस समय जगत् स्वामिनी हूँ....पर रही वैसी की वैसी ही—अकेली—असहाय—और दुखी।

[सिर थाम कर बैठ जाती है।]

[पटाक्षेप]

अंक चौथा

[समय—चार, पाँच महीने बाद; एक दिन आधी रात को।

स्थल—कुसुमपुर के राजमहालय का एक निर्जन भवन। दीवार पर लगी हुई लकड़ी की दीवटों पर रखे हुए दीपकों से भवन में एक अच्छा प्रकाश फैला हुआ है।

दूर से 'स्कंदगुप्त की जय' ऐसी घोषणा सुनाई दे रही है। महल में रहने वाले सैनिक, 'ध्रुवस्वामिनी की जय' ऐसी घोषणा करते हुए सुनाई देते हैं। फिर सब शांत हो जाते हैं।

हरिसेन शस्त्रों से सुसज्जित जैसे अभी युद्ध करके आया हो ऐसा दिखाई देता है। धनुष की डोरी उतार कर उसे ज़मीन पर रख कर वह स्थिति का निरीक्षण करता है। उसके मुख पर चिंता है।

सामने से कालिदास आता है; उसका मुख भी चिंताग्रस्त और दयनीय है।]

हरिसेन—कालिदास! स्वामिनी सो गईं क्या? अनेक रात्रियों के जागरण से बेचारी आधी हो गई हैं।

कालिदास—(खेद से) जैसे-तैसे अभी शांति से सोयीं। उनकी अधीरता का पार नहीं।

हरिसेन—(खेद से गर्दन हिलाकर) भाई, अधीरता किसको नहीं होती? और हो तो इसमें फिर आश्चर्य क्या? समस्त कुसुमपुर स्कंदगुप्त के पक्ष में हो गया। राजमहालय की रसद चुक गयी है और प्रतिदिन अपने पक्ष का कोई न कोई या तो दूसरे पक्ष में जा रहा है या मर रहा है।

कालिदास—यहाँ इस प्रकार क़ैद में पड़े-पड़े अट्ठाइस दिन हो गये।

हरिसेन—धन्य है पराक्रमदेव की विचक्षण बुद्धि को कि ऐसा दृढ़ महालय बनवाया; नहीं तो हमारी हड्डियों पर गृद्धों ने कब का चक्रव्यूह रच दिया होता।

कालिदास—पर महादंडनायक, प्रतिदिन स्कंदगुप्त का पक्ष प्रबल होता जा रहा है उसका क्या हो ?

हरिसेन—भाई, अब तो एकमात्र उन्दान की सेना की आशा है, पर आज तीन महीने हो गये मैंने संदेशा भेज दिया था पर उसकी खबर नहीं आई। भगवान् चक्रधर, भगवान् लक्ष्मीवल्लभ, इस समय महाराज चन्द्रगुप्त अच्छे होते—

कालिदास—अरे पागल या अच्छे, पर इस समय यहाँ होते—

ध्रुवदेवी—(आकर) क्या बातें हो रही हैं ?

[ध्रुवदेवी क्षीणकाय तथा उदास दिखाई देती है। उसकी आँखें, जागरण, चिंता और अशांति से मोटी और तेजस्वी हो गई हैं।]

हरिसेन—(चौंककर) स्वामिनी, अभी तो सोई थीं और अभी जाग गईं ? यदि सोयेंगी नहीं, तो आपका शरीर कैसे चल सकेगा ?

ध्रुवदेवी—(स्पष्ट पर मधुर हँस कर) हरिसेन तुम सब ने मेरे हाथ में पराक्रमदेव का राजदंड दिया है, फिर मुझे नींद कैसे आ सकती है ? रात और दिन इसकी रक्षा करते हुए मैं तनिक भी परिश्रांत नहीं होती।

हरिसेन—आपकी प्रेरणा से ही अपने सैनिक टिके हुए हैं।

ध्रुवदेवी—(हँस कर) मेरी प्रेरणा ? नहीं नहीं, मैं तो एकमात्र गुप्तकीर्ति और सनातन धर्म की संरक्षिणी हूँ, महाराज के स्थान की रक्षा का एक साधन हूँ। स्कंदगुप्त भले ही पराक्रमदेव का पुत्र हो पर दत्तदेवी का नहीं (ज़रा हँस कर) और स्कंद इस महल को जला भी दे तो भी दत्तदेवी का पुत्र लौट कर आता है तब तक मैं इसकी राख पर खड़ी रह कर उसके राजदंड की रक्षा करती रहूँगी।

कालिदास—स्वामिनी, महाराज अवश्य आयेंगे; वे आये बिना नहीं रह सकते।

ध्रुवदेवी—मुझे भी आशा है।

हरिसेन—महाराज चाहे जैसे पागल भी, यदि इस समय यहाँ होते तो समस्त कुसुमपुर स्कंदगुप्त को छोड़कर अपने पक्ष में आ गया होता। महादेवी! प्रजा पराक्रमदेव और दत्तदेवी के नाम पर मर मिटती है; महाराज यहाँ होते तो उन पर भी प्रजा न्योछावर हो गई होती।

ध्रुवदेवी—हाँ। (हँसकर) इस प्रजा के लिये तो मैं अकेली ही पापिनी हूँ!

कालिदास—और आप ही इस समय गुप्तकीर्ति की रक्षा कर रही हैं। विधाता की बलिहारी है!

[राजमहालय के बाहर कोलाहल सुनाई देता है।]

हरिसेन—(ध्यान देकर) दुश्मन फिर छापा मारना चाहता है!

ध्रुवदेवी—हाँ, चलें।

हरिसेन—नहीं स्वामिनी! आप यहीं रहें। रोहल गलती नहीं कर सकता। उसने योद्धाओं को ठीक-ठीक स्थानों पर अवस्थित कर दिया होगा। मैं अभी जाकर देखे आता हूँ।

ध्रुवदेवी—ठीक, जल्दी आना। (हरिसेन जाता है) कालिदास, भगवती सो गईं?

कालिदास—हाँ, शशिलेखा उनके पास है।

ध्रुवदेवी—और आचार्यदेव—

कालिदास—केवल एक वही मेरु सदृश स्वस्थ और निर्भय बैठे हैं और ध्यान कर रहे हैं, और कोई भी पूछने जाता है तो एक ही सूत्र का उच्चारण करते हैं—यतो धर्मस्ततो जयः।

ध्रुवदेवी—यह योगीन्द्र अद्भुत है। कालिदास इसकी स्थिर दृष्टि,

निश्चल स्वास्थ्य और सनातन सूत्रों के आगे हम सब, यह राज्य और पराक्रमदेव की कीर्ति—सब तुच्छ और क्षणजीवी लगते हैं।

कालिदास—आप सच कहती हैं। राजाओं के राज्य चंचल तरंगों की तरह इससे टकराते हैं और पीछे लौट जाते हैं, पर इससे यह गिरिराज डगमगाता नहीं; इसमें एकमात्र बादामी रंग की गहरी छाया एक भव्य गांभीर्य का रंग पूरती है।

[पीछे से होता हुआ कोलाहल दूर जाने लगता है।]

ध्रुवदेवी—हाँ, यह न होते तो अपना राज्य धर्मराज्य न गिना जाता; दूसर राज्यों की तरह अब्रह्मवर्चस ही दिखाई देता। (कालिदास हँसता है) क्यों, हँस क्यों रहे हो ?

कालिदास—(हँसकर) स्वामिनी, यह सब तूफ़ान शांत हो जाये और आप निर्भय हो कर राज्य करें, तब देखना। आचार्यदेव ने धर्म-राज्य स्थापित किया; मैं रस-राज्य स्थापित करूँगा।

ध्रुवदेवी—(खेद भरे स्वर में) मूर्ख न बनो ! मैं राज्य नहीं करने की और तुम माधवी के पीछे उन्मत्त रह कर काव्य नहीं रच सकते।

कालिदास—(हँसकर) ऐसा न कहो। माधवी के पीछे मेरा पागल-पन जितना अधिक बढ़ रहा है वैसे ही काव्यों की सरिता भी और अधिक वेग से बढ़ती जा रही है।

ध्रुवदेवी—(हँसकर) इन दिनों कौन सा काव्य रच रहे हो ?

कालिदास—रचा है एक; पर अभी बताऊँगा नहीं।

[पीछे का कोलाहल एकदम शांत पड़ जाता है।]

ध्रुवदेवी—(ध्यान देकर) मुझे लगता है छापे वालों को पीछे हटा दिया गया और अब शान्ति है..... (खिड़की में खटखट होती है) यह क्या ? कालिदास, मेरी तलवार ला तो ! कोई खिड़की पर चढ़ रहा है। कौन यह ? हरिसेन ! रोहल !

[कमर से कटार निकालती है।]

कालिदास—हरिसेन ! योद्धाओ !

[अपनी तलवार खींचता है ।]

ऊपर चढ़ने वाला—अरे चुप रह ! सारा महल जाग जायगा....

ध्रुवदेवी—(छाती पर हाथ रख कर) कौन ?

चन्द्रगुप्त—मैं हूँ स्वामिनी !

[खिड़की में से कूदकर अंदर आता है । यह इस समय सैनिक के वेश में है । उसके पास एक तलवार और एक भाला है । उसके शरीर पर धूल है पर उत्साह से उसका मुख देदीप्यमान है ।]

कालिदास—महाराज !

चन्द्रगुप्त—हाँ, शांत रहो । तुम्हीं दो आदमी हो या कोई और दूसरा भी है ?

ध्रुवदेवी—नहीं हम दो ही हैं । अ.....

चन्द्रगुप्त—चुप रहो । किसी को बुलाना मत । मैं पागल बन-बनकर थक गया हूँ; जरा देर अच्छा होने दो । कालिदास ! पानी तो ला । (हँसकर) मैं आज महीनों से घोड़ों की पीठ के सिवाय दूसरे आसन पर नहीं बैठा; मुझे ज़मीन पर ज़रा बैठने दो ।

[श्वास लेता है और पास पलँग पर बैठ जाता है । कालिदास पानी लेने के लिये जाता है ।]

ध्रुवदेवी—पर इस रास्ते से कैसे आये ? राजमहल के बाहर तो घेरा है ।

चन्द्रगुप्त—इसीलिये तो मैं इस रास्ते से आया । प्रजा ने धावा बोला कि मैं उसे चीर कर आगे बढ़ा; और कोट के पास आया इसके बाद मुझे क्या पूछना पड़ता ? इस महालय की एक-एक दीवार पर मैं चढ़ा हूँ और प्रत्येक छत से कूदा हूँ ।

ध्रुवदेवी—(हर्ष और उल्लास से) मेरे कार्तिकेय ! कितने महीनों के उपरांत आज फिर मिले ! (हँसती है)

चन्द्रगुप्त—(हँसकर) हाँ, स्वामिनी, मैं कदाचित् ठीक समय पर आ गया हूँ।

ध्रुवदेवी—तुम समय पर कब नहीं आते ? आज तीन महीने से चातक की तरह हम तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं और आज अट्ठाइस दिन हो गये कि हम इस राजमहालय में बंदी की तरह पड़े हैं। शरीर में प्राण अटके हुए थे केवल तुम्हारी प्रतीक्षा के सहारे !

चन्द्रगुप्त—पर यह सब है क्या ? मैं तो तुम्हारी आज्ञा के साथ ही घोड़े पर चल दिया था।

ध्रुवदेवी—तुम मालवा गये और मेरे नाम की घोषणा प्रजा में हुई, तुरन्त स्कन्दगुप्त के मामा ने प्रजाजनों को अपने हाथ में लेना आरंभ किया; और अंत में उसने महामंत्री वात्स्य को भी अपने पक्ष में ले लिया। उसे तो मेरा विनाश करना है।

चन्द्रगुप्त—(हँसकर) देखता हूँ कौन करता है ! पर तुमने उसका क्या बिगाड़ा है ?

ध्रुवदेवी—ये सब पराक्रमदेव की कीर्ति के संरक्षक हैं ! और मैं अकेली इसका विनाश करने वाली हूँ। लोग तो यह कहते हैं कि देव को मैंने मारा है और तुम्हें भी मैंने ही पागल बनाया है।

चन्द्रगुप्त—(हँसकर) मुझे पागल किसने किया।

[हँसता है। ध्रुवदेवी भी हँसती है।]

कालिदास—(आता है) महाराज, पानी पीजिये !

चन्द्रगुप्त—ला। मैं दिन भर का प्यासा हूँ।

[पानी पीता है।]

ध्रुवदेवी—कुछ खाना है ? मँगाऊँ ?

चन्द्रगुप्त—मेरा खून जब उबल रहा हो, तो मुझे भूख नहीं लगती।

कालिदास—आपकी सेना कहाँ है ?

चन्द्रगुप्त—(हँसकर) देखा, डरपोक ! और कुछ नहीं पूछता,

सेना की बात पूछता है ! आठ दिन हुए मैं सेना छोड़ कर उड़ते घोड़े से कुसुमपुर के रास्ते पर हो लिया था। उन्दान पीछे धीमे-धीमे आता है। यहाँ क्या बहुत आवश्यकता—

ध्रुवदेवी—आवश्यकता क्या ? यहाँ तो राजमहालय का आज विध्वंस हुआ, कल विध्वंस हुआ यही डर दिन-रात लगा रहता था; आधार केवल एक तुम्हारी सेना पर था।

चन्द्रगुप्त—(हँसकर) क्या मैं अकेला बस नहीं, स्वामिनी ! महा क्षत्रप का विजेता, सौराष्ट्र का स्वामी क्या अकेला बस नहीं ?

ध्रुवदेवी—सौराष्ट्र का स्वामी ?

चन्द्रगुप्त—हाँ, गिरिनगर और वृद्धनगर—दोनों मैंने जलाकार खाक कर दिये हैं। रुद्रसेन के सोलह लड़कों की चिता गिरिनगर की छाया में अब तक जल रही है।

ध्रुवदेवी—(हर्ष से) क्या कह रहे हो ? पराक्रमदेव की कीर्ति—

चन्द्रगुप्त—तब ? मैं रहा पागल आदमी, मैं ऐसा न करूँ तो पराक्रमदेव के घोड़े रोने लगें, मालूम है ? अब सौराष्ट्र भी तुम्हारे साम्राज्य में है, स्वामिनी !

ध्रुवदेवी—क्या कहते हो ?

चन्द्रगुप्त—कालिदास ! कोई आ तो नहीं रहा ? आ रहा हो तो कहना, मैं पागल बन जाऊँगा।

कालिदास—कोई आ ही नहीं सकता। दत्तदेवी सो गई हैं; हरिसेन और दूसरे दंडनायक किले पर हैं।

ध्रुवदेवी—अभी तुम अपना पागलपन छोड़ोगे नहीं ?

चन्द्रगुप्त—हाँ, तुम दो के अतिरिक्त और किसी से तो पूछो (चिल्लाकर) उन्मत्त, पागल, बेचारा चन्द्रगुप्त !

ध्रुवदेवी—अब यह छोड़ भी दो।

चन्द्रगुप्त—(खड़े होकर गंभीरता से) स्वामिनी, यह बात जाने दो, नहीं तो मैं पागल हो जाऊँगा।

ध्रुवदेवी—अच्छा जाने दो। महाराज! बैठो। महीनों हो गये बात करने की इच्छा थी पर अब तक पूरी नहीं हुई।

चन्द्रगुप्त—लो यह बैठा। (बैठता है) बोलो, यहाँ की और क्या खबर है?

ध्रुवदेवी—(बैठकर) जो थी वह कह दी। राजमहालय का कब पतन हो उसकी राह देख रहे थे और जीवनपर्यंत पराक्रमदेव की और तुम्हारी कीर्ति की ध्वजा फहराती हुई रक्खेंगे इसका संकल्प कर लिया था।

कालिदास—हाँ, अभी स्वामिनी ने हरिसेन से कहा था कि यह महल जल कर भस्म होगा तो भी दत्तदेवी के पुत्र के वापिस आने तक मैं इसकी भस्म पर खड़ी-खड़ी, राजदंड की रक्षा करती रहूँगी।

[ध्रुवदेवी शरमा कर मुंह नीचा कर लेती है।]

चन्द्रगुप्त—(गंभीर होकर) स्वामिनी! मेरे लिये क्यों?

ध्रुवदेवी—(हँसकर) तुमने मेरे लिये सौराष्ट्र जीता है न?

[दोनों हँसते हैं, आमने सामने देखते हैं और गंभीर हो जाते हैं।]

चन्द्रगुप्त—(नीचे देखकर) इस समय हम पागल हो गये हैं।

ध्रुवदेवी—बहुत वर्षों के उपरांत आज मुझे इस प्रकार पागल की तरह बोलना अच्छा लगता है। कल कौन जाने क्या हो जाये? पर महाराज, अब कल से राजदंड तुम्हें ही लेना पड़ेगा।

चन्द्रगुप्त—(खेद से) मुझे? नहीं यह नहीं हो सकता। मैं तो पागल हूँ।

ध्रुवदेवी—(अधीरता से) ऐसा करोगे तो मैं भी पगली हो जाऊँगी। फिर?

चन्द्रगुप्त—(हँसकर) इस समय यह बात जाने दो तो कैसा? अगर कोई आ गया तो मुझे फिर पागल बनना पड़ेगा। मुझे ज़रा स्वस्थ

होने दो। दौड़ादौड़ तथा मारामार के अतिरिक्त कोई और आनंद तो लूटने दो! (शांति के श्वास छोड़ता है) कालिदास! कोई नवीन रचना की हो तो सुनाओ न!

कालिदास—(हँसकर) मैंने 'कुमारसंभव' की रचना आरंभ की है।

चन्द्रगुप्त—सुना, कुछ तो सुना। स्वामिनी, अब तो कालिया का काव्य सुनना भी दूभर हो गया है।

कालिदास—(हँसकर) सुनो तब न! थोड़े दिन हुए तभी रचा है। (गला साफ करता है) शंकर ने कामदेव को जला कर भस्म कर दिया तब रति विलाप करती है—

पद्मिनी सदृश तुम्हारी प्रियतमा,
स्नेह जल में जी रही थी जो सदा।
छोड़ कर उसको कहाँ तुम चल दिये,
बह गये तट टूटने पर सरित के।
क्या कभी तुमने मुझे दी वेदना,
और क्या प्रतिकूल मैंने कुछ किया,
फिर बिना कारण मुझे क्यों यों रुला
देखते हो प्रियतमा को तड़ित से।

चन्द्रगुप्त—सुन्दर.....

[ध्रुवदेवी की ओर देखकर रुक जाता है।]

कालिदास—

भूल से लेते कभी परनाम जब,
बाँधती थी मैं तुम्हें कटि-डोर से।
मारती थी मैं कभी कोमल कमल,
बात वे तुमको भला क्या याद हैं?

झूठ समझूँ क्या तुम्हारे शब्द ये—
"हृदय में मेरे मधुर प्रिय ! तुम बसीं"
बन गये प्रिय जब भला तुम देह बिन,
तो भला जीवित कहाँ से मैं रहूँ ?

[कालिदास रुक कर दोनों की ओर देखता है। दोनों आमने-सामने देखकर नीचे देखते हैं।]

शिर से प्रणाम प्रिय तुमने किया,
एकान्त में की याचना :
दृढ़, मधुर, पुलकन भरे परिरंभ वे,
याद कर होती हृदय में है व्यथा।

[ध्रुवदेवी नीचे देखती है।]

कालिदास—(चन्द्रगुप्त की ओर देखकर) फिर रति प्रणयोन्मत्त प्रियतमाओं के मुख में ही सुशोभित हों ऐसे वाक्यों का उच्चारण करने लगी—

आग का शुचिपंथ ले कर प्रिय ! अमर
आ बसूँगी फिर तुम्हारी गोद में।
मुग्ध तुमको कर सकेंगी फिर भला,
स्वर्ग में क्या सुंदरी देवांगना ?

चन्द्रगुप्त—(गला साफकर) कालिदास ! यह तो बहुत हुआ। अब कुछ और कह।

कालिदास—(मूँछों में हँसकर) दूसरा कहूँ ? हाँ, देखो इसी काव्य की दूसरी पंक्तियाँ रची हैं, सुनाता हूँ। सुनो, इंदुमौलि से अस्वीकृत पार्वती तपस्या कर रही है; ब्रह्मचारी पूछता है, पार्वती की सखी कहती है—

छोड़ कर स्वर्गीय वैभव इंद्र का,
दिग्गजों की कर प्रणय-अवमानना !
मानिनी, यह सखि हमारी शैलजा,
चाहती है प्राण-प्रियतम शंभु को।
विजय पायी है जिन्होंने काम पर,
और संयम - देव के अवतार जो।
नारि का सौंदर्य और लालित्य फिर,
कर सके उसमें प्रलय की सृष्टि क्यों,
पुष्पधन्वा के मृदुल से पंच वाण,
बींध पाये क्या हृदय उस देव का,
एक कटु हुंकार से लौटे तभी,
घुस गये गहरे हृदय में सखी के।
तभी से इस बालिका का रोम रोम,
जल रहा है एक जलती आग में।
धूसरित अलकें जटा सी लटकतीं,
पोंछती हैं भाल का चंदन ललित।
पिता के घर हिम-शिलातल पर पड़ी,
शांति यह पाती नहीं है जरा भी।

[ध्रुवदेवी आँखें फाड़कर देखती है]

कालिदास—(मज़ाक में) स्वामिनी, देखो अब पार्वती की तपश्चर्या—

गाती है जब गीत उनके प्रिय सखी,
भाव से अभिभूत हो मृदु प्रणय के :
टूट जाती है मृदुल शब्दावली,
आँसुओं से सजल, रुँध जाता गला।

गूंजता संगीत वह बन में करुण
और किन्नरकन्यकायें सुन उसे
शैलजा के साथ सखि के प्रेम से,
हैं बहाती अश्रुधारा तरल वे।
(धीमे से) पूर्ण रजनी बीत जाती जागते,
नींद पल भर को कभी आती अगर।
जाग उठती है तभी सहसा उमा,
और कुछ वह बोलती अस्पष्ट सी—
"जा रहे हो प्राण मुझको छोड़ क्यों ?"
कह, बढ़ाती है युगल कर प्रणय के,
स्वप्न के मधुदेश में यह बालिका
कल्पना में भेंटती है प्राण से।

ध्रुवदेवी—(गुस्से में) कालिदास ! आज तुझे हो क्या गया है ? यह क्या सुना रहा है ?

कालिदास—(धृष्टता से) क्या है ? आज आप दोनों को क्या हो गया है ? अगर मेरी कविता में आनन्द न आता हो, तो लो मैं चला।

[चला जाता है। दोनों चुपचाप बैठे रहते हैं]

चन्द्रगुप्त—(थोड़ी देर में) दत्तदेवी कैसी हैं ?

ध्रुवदेवी—(नीचे देख कर) ठीक हैं।

[थोड़ी देर दोनों चुप रहते हैं]

चन्द्रगुप्त—वात्स्य मंत्री भी दुष्ट निकला ?

ध्रुवदेवी—हाँ।

[फिर दोनों थोड़ी देर चुप रहते हैं]

ध्रुवदेवी—तुम कुछ जलपान नहीं करोगे ?

चन्द्रगुप्त—नहीं।

[बाहर धड़ाका होता है]

ध्रुवदेवी—(चौंककर) यह क्या ?

चन्द्रगुप्त—यह तो कुछ कोट पर से गिरा है।

ध्रुवदेवी—अ....च्छा।

चन्द्रगुप्त—क्यों क्या विचार कर रही हो !

ध्रुवदेवी—कुछ नहीं। तुम कुछ क्यों नहीं कहते ?

चन्द्रगुप्त—क्या कहूँ ? (खड़ा होता है और घूमता है) स्वामिनी ! हम इस तरह कब तक चुपचाप बैठे रह सकेंगे ?

ध्रुवदेवी—नहीं तो और क्या करें ?

[जंभाई लेती है]

चन्द्रगुप्त—नींद आ रही है ?

ध्रुवदेवी—नहीं।

[दोनों फिर चुपचाप बैठे रहते हैं।]

चन्द्रगुप्त—स्वामिनी, जीवन में पहली बार आज हम एकांत में मिले हैं और कहने को तो बहुत—बहुत है पर शब्द नहीं निकलते।

ध्रुवदेवी—महाराज....(दुखी होकर) महाराज।

चन्द्रगुप्त—(चौंककर) क्या है ? (आवाज़ कोमल बना कर) स्वामिनी !

ध्रुवदेवी—(घबराकर नीचे देखती है) महाराज ! जीवन में कुछ घड़ियाँ ऐसी ही लगती हैं।....

चन्द्रगुप्त—(उठकर ध्रुवदेवी के पास बैठता है। दाँत पीस कर) मेरे मन में भी यह विचार उठता है कि क्या करें ?

ध्रुवदेवी—हमको पराक्रमदेव की कीर्ति और याज्ञवल्क्य के धर्म का भार तो वहन करना ही.....

चन्द्रगुप्त—(खेद से) हाँ....जीवन भर....

[फिर स्तब्धता]

चन्द्रगुप्त—ध्रुवदेवी !

ध्रुवदेवी—महाराज !

चन्द्रगुप्त—(दाँत पीसता हुआ खड़ा हो जाता है) स्वामिनी, हमें इस प्रकार एकांत सेवन न करना चाहिये।

ध्रुवदेवी—(दुखी होकर) महाराज ! जीवन में सारी अभिलाषाएँ जीवित रखीं....वियोग सहा....और—

[हाथ मलती है।]

चन्द्रगुप्त—(कपाल पर हाथ ठोंककर) विधाता ! विधाता ! ....देवी ! अच्छा, चलें।

ध्रुवदेवी—चलें ?....(तेज भरी आँखों से देखते हुए) कल का प्रभात होने पर तो संसार हमें इस प्रकार बैठने भी नहीं देगा।

चन्द्रगुप्त—(हाथ फैलाकर) हाँ....और ऐसा भी हो सकता है कि कल प्रभात के साथ-साथ धड़ पर यह सिर भी न रहे....

[फिर थोड़ी देर दोनों चुप बैठे रहते हैं।]

ध्रुवदेवी—ऐसा निष्क्रिय जीवन रहा या न रहा दोनों बराबर है।

चन्द्रगुप्त—(पृथ्वी की ओर एकटक देख कर) कीर्ति के लिये, विजय के लिये निष्फल प्रयास करने में ही....

ध्रुवदेवी—(विनय-नम्र स्वर में) महाराज !

चन्द्रगुप्त—जलाशय के सारस और उस छत पर के कबूतर हमसे भी अधिक भाग्यशाली हैं।

ध्रुवदेवी—(चारों ओर देखती है) कैसी शांति है।

चन्द्रगुप्त—(जरा हाथ फैलाकर) देवी !

ध्रुवदेवी—ओ लक्ष्मीपति ! क्या होगा ?

चन्द्रगुप्त—ओ विष्णु ! इन झंझटों से कब मुक्ति मिलेगी ?

[उठ कर घूमता है।]

ध्रुवदेवी—महाराज ! महाराज ! यहाँ आओ बैठो। (अपने

सिर पर हाथ रखकर) मेरा सिर घूम रहा है, मैं पागल जैसी हो गई हूँ। महाराज !

चन्द्रगुप्त—(जैसे-तैसे स्वस्थता लाकर) देवी ! कृपा करो। मुझसे न बोलो !

ध्रुवदेवी—महाराज ! इस तरह, अलग-अलग कब तक ? कब तक ? कीर्ति और धर्म की शृंखला में बद्ध....

चन्द्रगुप्त—(क्षुब्ध होकर) हाँ, बद्ध बद्ध ! दूसरों के लिये, मृग-मरीचिका के लिए हमें जीना है ! (अधीरता से) देवी !

ध्रुवदेवी—मेरे कार्तिकेय !

[पास जाती है।]

चन्द्रगुप्त—(दूर खिसकता है) मेरे पास न आना ! पूर्वजों की कीर्ति और आचार्य के वचन सब पर पानी फिर जायगा।

ध्रुवदेवी—फिर जाने दो....

[दोनों पास आते हैं स्पर्श करने के लिये जाते हैं, पर पीछे हट जाते हैं।]

कालिदास—(आता है। स्वगत) अरे ! मैं कहाँ बीच में आ टपका ?

[एक ओर खड़ा हो जाता है]

ध्रुवदेवी—महाराज ! हम इस धर्मराज्य के स्तंभ !—

चन्द्रगुप्त—(दाँत पीस कर) हाँ, (पीछे हटता है) हाँ, कीर्ति, कुल और धर्म—हाँ....स्वप्न में हूँ ऐसा भान हो रहा है....मानो तुम जलते हुए अंगारों की बनी हो। इस प्रकार तुम मेरे मस्तिष्क को जला रही हो....यह सब झूठ !....(ज़ोर से दाँत पीस कर) 'जहाँ धर्म वहाँ जय' यह गुप्तकुल का जीवन मंत्र।

[नीचे देखता है]

ध्रुवदेवी—ऊपर देखो !

चन्द्रगुप्त—ध्रुवदेवी, ऊपर कैसे देख सकता हूँ ? हृदय जो लेना

चाहता है वह लिया नही जा सकता। जो देना चाहता है वह दे नहीं सकता। एकमात्र धर्म और कीर्ति के शुष्क परिधान....

ध्रुवदेवी—संसार में यह सब किस लिये बनाये गये हैं? रात और दिन, सुख और दुःख, सत् और असत् सब चले जायँ....एकमात्र....

चन्द्रगुप्त—ध्रुवदेवी, कोई ऐसी माया का विस्तार करें कि समस्त जगत विलीन हो जाय और व्योम पर आवरण छाया रहे! हम एक अभेद्य एकांत में लिपट जायँ—अनंतकाल के लिये और इस संसार को देखने की पर्वाह भी न करें....

ध्रुवदेवी—और हमारे स्वप्न हम में सदेह जियें....

[हाथ फैलाती है। चन्द्रगुप्त पीछे खिसकता है।]

कालिदास—(स्वगत) भगवान्, कुसुमायुध!

चन्द्रगुप्त—(आँखों पर हाथ रख कर) स्वामिनी! जाने दो, जाने दो! हम स्वप्न देख रहे हैं। हम पागल हो गये हैं।

ध्रुवदेवी—हाँ, हम पागल हो गये हैं।

चन्द्रगुप्त—स्वामिनी! यतोधर्मस्ततो जयः।

ध्रुवदेवी—(निःश्वासें छोड़ कर) मुझे मालूम है।

चन्द्रगुप्त—मुझसे सहन नही होता। मैं यहाँ नही रह सकता स्वामिनी!

[आँखों पर हाथ रख लेता है।]

ध्रुवदेवी—ओ कमलावल्लभ!

[बैठ कर सिसकने लगती है। कालिदास चला जाता है बाहर महालय के द्वार पर जैसे दुश्मन ने जोर से हमला किया हो ऐसा सुनाई देता है और बाहर कोलाहल होता है। अंदर भी दौडादौड़ और हुंकार होती है।]

ध्रुवदेवी—यह क्या महाराज!

चन्द्रगुप्त—(हँसकर) प्रमुख द्वार तोड़ा जा रहा है। आवाज से

ऐसा जान पड़ता है जैसे तीन हाथी द्वार तोड़ने के लिये ज़ोर लगा रहे हों....मारे गये !

ध्रुवदेवी—(भय से) क्यों ?

चन्द्रगुप्त—यह दरवाज़ा इतना ज़ोर नहीं सह सकता (ज़ोर की कड़कड़ाहट होती है) द्वार टूटने लगा।

[जाने लगता है।]

ध्रुवदेवी—महाराज ! कहाँ जाते हो ?

[दूसरी आवाज होती है और बाहर कोलाहल सुनाई देता है]

चन्द्रगुप्त—कहाँ ?.....गढ़ पर.....

[चारों ओर देखता है।]

ध्रुवदेवी—(पास आकर) स्कंदगुप्त ने यदि महालय पर अधिकार कर लिया तो हमारा क्या होगा ?

चन्द्रगुप्त—कुछ नहीं स्वामिनी, हिम्मत रखो।

ध्रुवदेवी—(प्रार्थना से) महाराज ! अब तक तो मैंने हिम्मत रखी, अब नहीं रहती। महाराज ! तुम न जाओ। (अधिक कोलाहल के साथ कड़कड़ाहट होती है) महाराज ! मैं तुम्हारे पैर छूती हूँ, तुम छिप जाओ। ये सब मेरे ख़ून के प्यासे हैं। मुझे अकेली ही मरने दो। मुझे मारने के बाद इनका आवेश शांत हो जायगा....

चन्द्रगुप्त—स्वामिनी ! यह तुमने क्या कहा ? क्या तुम्हारे शरीर की बलि देकर मैं अपने देह की रक्षा करूँगा ? स्वामिनी ! क्या कहा ? मेरा शरीर भले ही चला जाय, पर तुम्हारे शरीर को आँच नहीं आ सकती। वीर के लिये मृत्यु तृणवत् है। घबराओ मत। मुझे जाने दो। ये बालक मेरा क्या बिगाड़ सकेंगे ?

[बाहर जोर का धमाका होता और द्वार टूटने की-सी आवाज होती है। ध्रुवदेवी उसका हाथ पकड़ती है।]

ध्रुवदेवी—नहीं, मेरे महाराज ! मेरे स्वामी !

[पलंग पर पड़ी हुई अपनी कटार ले लेती है।]

चन्द्रगुप्त—क्यों ?

ध्रुवदेवी—तुम्हें कुछ हो गया तो (पास आकर उछलते हृदय से) मुझे तुम्हारी शैय्या पर ही सोना है।

चन्द्रगुप्त—(जाने की उतावल में) ये सब महालय में प्रवेश करने लगे हैं....मुझे जाने दो। मेरी स्वामिनी !—

ध्रुवदेवी—तो मुझे भी ले चलो, स्वामी। जीते जी हम दोनों का परिणय करा देने वाला पुरोहित हमें नही मिला अब परलोक-मार्ग पर यमराज करायेगा। हम दोनों बाहर निकलें, मरें और नहीं तो शवों के सेतु पर होते हुए भाग चलें।

[जीना चढ़ने की आवाज़ आती है]

चन्द्रगुप्त—नहीं, देखो बड़े जीने पर दुश्मन चढ़ने लगे हैं—(आवाज़ पास आती जाती है) ये सब ऊपर आ रहे हैं। स्वामिनी ! (उसकी मुखाकृति भयंकर बन जाती है) इस ओर आओ, यहाँ। गुप्त महादेवी के गौरव को देखता हूँ कौन हाथ लगाता है ? (कालिदास, माधव सेना और दत्तदेवी को लेकर आता है) कौन भगवती ?

दत्तदेवी—(काँपते स्वर में) कौन, बेटा तू ? इस समय तू कहाँ से ? मेरे बेटे ! महालय भंग हो गया तेरे वैरी आ रहे हैं। इस समय तू कहाँ से आया ?

चन्द्रगुप्त—(गर्व से) भगवती, यह क्या कहती हो ? अप्रतिवार्यवीर्य कृतांतपरशु की महादेवी ! सहस्रों समरांगणों को देख-देख कर बूढ़ी हो गई, तुम इस प्रकार क्यों घबराती हो ?

दत्तदेवी—(हर्ष से) बेटा, तू अच्छा हो गया ?

चन्द्रगुप्त—मैं पागल हूँ....इस समय पराक्रमदेव की कीर्ति के संरक्षण का पागलपन सवार है। मैं देखता हूँ कि पराक्रमदेव के भवन में हमें कौन हाथ लगाता है ? और हाथ लगा कर फिर जीवित वापिस

लौट जाता है। माता, भगवती ! पराक्रमदेव के घोड़े बिगड़ गये हैं, हिनहिना रहे हैं दिग्विजय करने के लिये निकल पड़े हैं।

दत्तदेवी—(निराशा से) अभी पागल है।

कालिदास—महाराज ! वे अब यहीं आ रहे हैं उस ओर चलो।

हरिसेन—(घायल दौड़ता हुआ आता है) स्वामिनी....कौन, महाराज ? महाराज ! इस समय सर्वस्व हाथ से गया....हम सब मर गये। स्कंदगुप्त और वात्स्य अभी आ रहे हैं। भागो !

[बाहर का दरवाजा जोर से ठोका जाता है।]

चन्द्रगुप्त—हरिसेन ! ध्रुवभूति के पुत्र ! तू भी डर गया ? अपना परशु मुझे दे। घबरा मत। मैं अभी जाकर द्वार खोलता हूँ। पराक्रमदेव का पुत्र इन सब का उचित रीति से सत्कार करेगा।

ध्रुवदेवी—(हाथ जोड़ कर अश्रुसिक्त नयनों से चन्द्रगुप्त की तरफ़ देखती है) स्वामी !

[सब चौंकते हैं]

चन्द्रगुप्त—भगवती ! तुम बड़ी-बूढ़ी हो। हरिसेन और कालिदास तुम विप्र हो। हम दो पागल हैं। हम मरने वाले थे साथ साथ.... यमराज परलोक में हमारा विधिपूर्वक लग्न करेंगे....मैं अब द्वार खोलता हूँ पर इससे पहले क्या तुम हमारी लग्नविधि इस जन्म में पूरी कर दोगे ?

दत्तदेवी—(विस्मय से) चन्द्र !

चन्द्रगुप्त—भगवती, घबराने की बात नहीं, अधर्म लगे तो क्षमा कर देना। हरिसेन ! कालिदास ! बोलो क्या कहते हो ?

हरिसेन—महाराज ! पर इस घड़ी में—

चन्द्रगुप्त—हरिसेन ! मेरी आज्ञा है।

कालिदास—(आँसू पोंछ कर) स्वामिनी, मैं लग्न कराता हूँ।

धर्म को अच्छा लगे या न लगे पर प्रणय-धर्म ने तो कब से आपके लग्न की स्वीकृति दे दी है।

याज्ञवल्क्य—(शांति से आकर) धर्म को क्या नहीं अच्छा लगता ?

[बाहर प्रजा ज़ोर से द्वार पर धक्का मारती है]

चद्रगुप्त—कौन आचार्यदेव ? (चरण छूकर) पधारो, हमारा लग्न-संपादन कर दो। द्वार खोल कर मुझे मृत्यु को निमंत्रण देना है।

ध्रुवदेवी—(हाथ जोड़कर) आचार्यदेव ! मैं भी चाहे मर जाऊँ, पर मुझे महाराज की पत्नी हो कर मरना है।

कालिदास—(आवेश में) तुम्हारा धर्म न कहता हो तो जल्दी कह दो जिससे मैं लग्न कराना आरंभ कर दूँ।

याज्ञवल्क्य—वत्सो ! धर्म और नीति, दोनों तुम्हारे लग्न की स्वीकृति देंगी। अथर्वागिरस, कौटिल्य और याज्ञवल्क्य स्मृति तीनों ही एकमत हैं। धर्मादित्य के पुत्र और अच्युतदेव की पुत्री। (दोनों के हाथ मिलाकर)

सम्राज्ञी श्वशुरे भव, सम्राज्ञी श्वश्वां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव, सम्राज्ञी अधिदेवृषु ॥

वत्सो, आयुष्मान होओ, पुत्रवान होओ, सुखी बनो !

[बाहर लोग ज़ोर लगाते हैं और द्वार हिलता है।]

चन्द्रगुप्त—(गर्व से द्वार की तरफ़ मुड़कर) और अब आचार्यदेव, भगवती और देवी, देखिये कौन पराक्रमदेव के पुत्र से भिड़ना चाहता है ? हरिसेन ! ला अपना परशु ! (हाथ में परशु लेता है और जा कर एकदम द्वार खोलता है। स्कंद, वात्स्य इत्यादि जो द्वार खोलने पर उतारू थे वे एकदम अंदर धँस आते हैं। चन्द्रगुप्त पीछे हट कर गौरव से सामने देखता है। (भयंकर स्वर में) स्कंद, वात्स्य, दमन किस लिये आये हो ? पृथ्वी-विजेताओं के पास आने का यह ढंग तुम्हें किसने सिखाया ?

वात्स्य—(चौंककर, क्षोभ से) महाराज !

चन्द्रगुप्त—(सत्ता से हँसकर) हरिसेन ! महादंडनायक ! मंत्रीवर वृद्ध हो गये हैं। किसके साथ बोल रहे हैं यह उनको दिखाई नहीं देता। तुम तो महाराजाधिराज परमभागवत चन्द्रगुप्त के साथ बात कर रहे हो। और स्कंद मूर्ख ! तुझे यह क्या सूझा ? और तुम सब परमभागवतों के महालय के ऊपर आक्रमण करने की हिम्मत कर रहे हो ?

[क्रोध से देखता है]

स्कंद—(काँपते हुए) महाराज !

हरिसेन—महाराजाधिराज !

दमन—(धृष्टता से आगे आकर) हमारी वह कुलविनाशिनी—

चन्द्रगुप्त—खबरदार ! दमन, मेरी महादेवी ध्रुवस्वामिनी के विषय में यदि एक भी शब्द बोलेगा तो सिर उड़ा दूँगा, समझा ?

वात्स्य—(चिंता से चारों ओर देखते हुए) आपकी महादेवी !

चन्द्रगुप्त—मंत्रीवर ! आचार्यदेव ने अभी हम दोनों को विवाहसूत्र में बाँधा है (द्वार में से झाँकते हुए कितने ही पुरजनों से) और आओ सब अंदर आओ। मेरे शूरवीरो ! पुरजनो ! अप्रतिवार्यवीर्य समुद्रगुप्त का जयघोष करो। मैं तुमको सौराष्ट्र का समाचार सुनाता हूँ। हमारी सेना ने शकपति के कुल का विध्वंस कर दिया है। सौराष्ट्र पर परमभागवत का ध्वज फहरा रहा है; और मगध की विजयी सेना को लेकर महादंडनायक उन्दान आ पहुँचा है। उसका स्वागत करने के लिये जाओ। कल से हमारी—मेरी और ध्रुवस्वामिनीदेवी के नाम की घोषणा संसार में होगी....(कोई बोलता नहीं) बोलो....स्कंद ! वात्स्य ! दमन !....शूरवीरो ! मैं यह खड़ा....अकेला....निःशस्त्र (हथियार फेंक देता है) मैं इस समय पराक्रमदेव का जय-घोष करता हूँ। तुम्हें क्या कहना है ?....(सब शांत खड़े रहते हैं) पराक्रमदेव की जय !

[लगभग सभी जयघोष करते हैं—'पराक्रमदेव की जय']

हरिसेन--और बोलो--महाराजाधिराज परमभट्टार्क श्री चन्द्रगुप्त की जय ! महादेवी ध्रुवस्वामिनीदेवी की जय !

[वात्स्य, स्कंद और दमन देखते रहते हैं।]

प्रजा--महाराज चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनीदेवी की जय !

दत्तदेवी--(गर्व से) और पुत्रो संसार में दिखा दो कि आज श्री गुप्तकुल का तारक अवतरित हुआ है।

ध्रुवदेवी--और आज विक्रम का आदित्य उगा है।

चन्द्रगुप्त--और जगत में जा कर जय-घोषणा करो--'जहाँ धर्म वहाँ जय'....और आचार्यदेव ! मुझे तथा देवी को आशीर्वाद दो।

[चन्द्रगुप्त और ध्रुवदेवी याज्ञवल्क्य के चरण छूते हैं।]

याज्ञवल्क्य--(हाथ फैलाकर) जो आशीर्वाद तेरे पिता को दिया वही आज तुझे फिर देता हूँ--यस्मिन् देशे मृगः कृष्णः तस्मिन् धर्मान् निबोधत।

[पटाक्षेप]